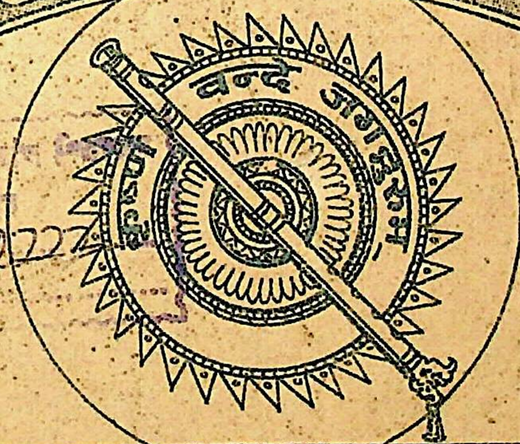
श्रीकृष्ण-संदेश







श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान मथुरा

देवता-गन्धर्व,
यक्ष-किन्नर, दैत्य-दानव,
राक्षस, भूत-प्रेत-पिशाच, यक्षिणी-
डाकिनी-शाकिनी, कुष्माण्ड-पूतना
आदि अनेक योनियाँ हैं, जिनके शरी
पाञ्च भौतिक होनेपर भी हमारे समा
पृथ्वी तत्त्व प्रधान नहीं हैं। कुछके शरीरमें
वायुकी और कुछमें अग्निकी प्रधानता है। अतः
ये हमारे लिए अदृश्य हैं। हमारे लिए अभेद्य
पदार्थ-पर्वत, भित्तियां भी इनकी गतिमें बाधक नहीं।
इनकी गति तथा शक्तिमें तारतम्यतो होता है; किन्तु वह
पार्थिव शरीरोंसे बहुत अधिक है।

२३८५



कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

अनुक्रमणिका

श्रीकृष्ण-सन्देश, मार्च १९८१

प्रभु-आवत

(श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र')

अमृतपुत्र

(श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र')

एक प्रतिका मूल्य : १/- वार्षिक शुल्क : १०/- आजीवन शुल्क : १५१/

सम्पादक—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थानके लिए श्रीमनोहरलाल पाठक, द्वारा शारदा प्रिन्टर्स, मथुरामें मुद्रित करवाकर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान मथुरा २८१००१ से प्रकाशित ।

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम।।

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम।।

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ।।

With Best Compliments

From

THE GWALIOR
RAYON SILK MFG. (WVG) Co. Ltd.

Birlagram, Nagda (W. Rly.)



STAPLE FIBRE DIVISION, BIRLAGRAM
Manufacturers of Viscose Staple Fibre.



ENGINEERING DIVISION, BIRLAGRAM
Manufacturers of Rayon & Allied Chemical Plant & Machinery



CHEMICAL DIVISION, BIRLAGRAM
Manufacturers of Rayon Grade Caustic Soda.



Telegram :
GRASIM—BIRLAGRAM.

Telephone :
Nagda. 38 & 88

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ।।

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति प्रधान
मासिक पत्र

श्रीकृष्ण-सन्देश

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

प्रवर्तक
पुण्यश्लोक श्री जुगलकिशोर बिरला

वर्ष १६	मथुरा श्रीकृष्ण सम्वत् ५२०६ मार्च १९८१	अङ्क-३

सन्देश-चिन्तन

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ ८. २२ ॥

सामान्यार्थ—अर्जुन ! वह परम पुरुष अनन्य भक्तिसे प्राप्त होता है, जिसके भीतर ही सब प्राणि-पदार्थ हैं और जिसके द्वारा यह सब विश्व व्याप्त है ॥८-२२॥

विशेष— पार्थ ! इस सम्बोधनके द्वारा भगवानने फिर अर्जुनसे अपनी निकटता सूचित की । यह सम्बोधन श्रीकृष्ण बड़े स्नेहसे अर्जुनको करते हैं और तब करते हैं, जब किसी परम रहस्यकी या भक्तिकी बात करनी होती है ।

'स परः पुरुषः लभ्यः'—वह पुरुष जो अव्यक्तसे भी अव्यक्त है, सनातन है। सबके नष्ट होते रहने पर भी अविनाशी है, जिसे परमगति कहा गया है। जिसे प्राप्त करके फिर लौटना नहीं होता ; क्योंकि वही मेरा परमधाम है, मेरा स्वरूप है, अतः वह लभ्य है।

लभ्य कहनेका तात्पर्य यह है कि उसे अलभ्य या दुर्लभ मानकर निराश होनेकी बात नहीं है। वह भले अनिर्वचनीय और प्रकृति-अव्यक्तसे भी परे हैं ; किन्तु बहुत दूर नहीं है।

'यस्यान्तः स्थानि भूतानि'—यह समस्त प्राणि-पदार्थ उसके भीतर ही हैं। इसी बातको एक भावुक महापुरुष इस प्रकार कहते हैं— सब जीव भगवानकी गोदमें ही सो रहे हैं। यह दूसरी बात है कि सोते-सोते वे स्वप्न देख रहे हैं और स्वप्नमें अपनेको भगवानसे वियुक्त समझ रहे हैं।'

मोह निसा सब सोवनि हारा।
देखहिं सपन अनेक प्रकारा ।।

—रामचरितमानस

येन सर्वमिदं ततम्—केवल यही नहीं कि समस्त भूतग्राम उसके भीतर हैं' वह सबको व्याप्त किये हैं। सबके भीतर भी वही है। वह सर्वव्यापी है।

इस पर विचार करें तो परिणाम क्या आता है ?

व्यापकसे व्याप्यकी सत्ता पृथक नहीं हुआ करती। अतएव यह सब दृश्य प्रपञ्च केवल प्रतीति है। केवल वही है जिसे परम पुरुष कहा जा रहा है।

वह परम पुरुष लभ्य है। कैसे ?

अनन्यया भक्त्या—वह अनन्य भक्तिके द्वारा प्राप्य है। इस प्रतिपादनके द्वारा श्रीकृष्णने स्पष्टकर दिया कि वह परमपुरुष मैं स्वयं हूँ।

निर्गुण निराकारकी प्राप्ति नहीं होती। उसका अपरोक्ष साक्षात् होता है अर्थात् आत्मरूपसे उसकी अनुभूति होती है। यह होता है ज्ञानके द्वारा। भक्तिके द्वारा सगुण साकारकी प्राप्ति होती है। अतः भक्तिके द्वारा उसे लभ्य बतलाकर भगवानने उस निर्गुण तत्त्वका सगुणसे सर्वथा अभेद सूचित किया ॥८-२२॥



गीतांजलि

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बंगला मूल
४

विपदे मोरे रक्षा करो
ए नहे मोर प्रार्थना;
विपदे आमि ना येन करि भय।

दुःख तापे व्यथित चिते
ना इ बा दिले सान्त्वना,
दुःखे येन करिते पारि जय।

सहाय मोर ना यदि जुटें
निजेर बल ना येन टूटे
संसारेते घटिले क्षति
लभिले शुधु वंचना
निजेर मने ना येन मानि क्षय।

आमारे तुमि करिबे त्राण
ए नहे मोर प्रार्थना,
तरि ते पारि शकति येन रय।

आमार भार लाघव करि
नाइ बा दिले सान्त्वना,
वहिते पारि एमनि येन हय।

नम्र शिरे सुखेर दिने
तोमारि मुख लइ ब चिने,
दुखेर राते निखिल धरा
येदिन करे वचना
तोमारे येन ना करि संशय।

हिन्दी अनुवाद
४

विपत्तिमें रक्षा करो
यह न मेरी प्रार्थना,
विपत्तिमें न करूँ भय।

दुःख-व्यथित हृदयको मेरे
न देना चाहे सान्त्वना,
दुःख पर मैं पा सकूँ विजय।

सहाय अगर कोई न हो
अपना बल पर कम न हो,
संसारमें यदि हो क्षति
मिले केवल वंचना
अपने मनमैं न मानूँ क्षय।

मेरा तुम करो त्राण
यह न मेरी प्रार्थना,
तर सकूँ खुद, रहे शक्ति यह।

मेरा भार लघु बनाकर
न देना चाहे सान्त्वना,
ढ़ो सकूँ उसे, देना शक्ति यह।

नम्र सिरसे सुखके दिनोंमें
तेरा ही मुख पहचानूंगा मैं,
दुखकी रात सारा संसार
करेगा जब वंचना
न करूँ तब तुमपर भी संशय।

अनुवादक—माधवप्रसाद गोयनका

गौदुग्ध—एक चमत्कार

—श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री

इससे बढ़कर गायकी कोई प्रशंसा नहीं हो सकती कि 'गाय सबकी माता है।' यह वेद वाक्य इसका प्रमाण है 'गावो विश्वस्य मातरः।'

माता बालकका जिस प्रकार पालन-पोषण और संवर्धन करती है, उसी प्रकार गाय भी अपने भक्तोंपर सुखकी वर्षा करती है। गायकी छत्र-छायामें कोई दुःखी नहीं रह सकता।

गायके दूध द्वारा भयंकरसे भयंकर शारीरिक एवं मानसिक रोग दूर किये जा सकते हैं।

कुछ चमत्कारिक घटनाओं तथा प्रयोगोंका वर्णन इस लेखमें प्रस्तुत है।

अपने साम्राज्यका कोई उत्तराधिकारी न होनेके कारण दुःखी राजा दिलीप रानी सुदक्षिणाके साथ ऋषि वशिष्ठके आश्रममें गये। हिमालयकी तलहटीमें बने आश्रममें उनकी चिकित्साका प्रबन्ध किया।

आश्रमकी काले रंगकी नन्दिनी गायका दूध २१ दिन तक राजा और रानीको विशिष्ट प्रमाणमें दिया गया। चरानेके लिए हिमालयका वह स्थान निश्चित किया गया जहाँ दिव्य औषधियां थीं। कुछ तो ऐसी औषधियां थीं कि रातमें उसकी चमक में किन्नरियां नर्तन किया करती थीं।

दोनों पति-पत्नियोंको गो-सेवाकी विधि बताई गई। बड़ी श्रद्धा एवं प्रेमसे दोनोंने नन्दिनीकी सेवाकी। ब्रह्मचर्यका पालन किया और अन्तमें उनकी मनोकामना पूर्ण हुई। गोदुग्धके इस प्रयोगसे ही उन्होंने रघु जैसे महापराक्रमी पुत्रको प्राप्तकिया।

महाराजा दशरथ

दशरथके रनिवासमें अनेक स्त्रियाँ थीं और तीन रानिया, कैकेयी प्रधान थी और उत्तरआयमें उससे विवाह हुआ था। साठ वर्षकी आयुके पश्चात् भी जब कोई सन्तान नहीं हुई तो कुलगुरु वशिष्ठके आश्रम में 'पुत्रेष्टि' गो-दुग्धके प्रयोगसे उन्हें राम, भरत, और शत्रुघ्न जैसे पुत्र प्राप्त हुए। महाराजा दशरथके लिए जो यज्ञीय खीर बनाई जाती थी उस दूधमें पौष्टिक औषधियोंका वैज्ञानिक प्रयोग किया गया था।

काया कल्प के लिए

लगभग ७० वर्षकी आयुके संग्रहणीके एक रोगीका हमने जो इलाज किया वह गोदुग्धका ही एक विशेष प्रयोग था। अनेक वैद्योंकी सलाह लेकर निदान एवं औषधिका निश्चय होनेके पश्चात् हमने केवल गोदुग्ध पर उन्हें रखा। स्वर्णपरपटी एवं कुछ अन्य अवरोधक औषधियों का मिश्रण दिया गया। किन्तु जिस गायका दूध उन्हें दिया गया उसके आहारमें सूखा घास, चरी (कडबी) तथा अफीमके डोडे और गोखरू का चूर्ण दिया गया। धीरे-धीरे रोगीका मल बंधने लगा, दस्तों के प्रमाण कम हो गए, पैरों की सूजन कम हो गई तथा क्षुधा बढ़ने लगी। तीसरे मासमें रोगी प्रतिदिन ६ से ७ लीटर दूध-पी जाता था। नेत्र ज्योति बढ़ गई थी तथा पुराना मूत्र विकार समाप्त हो गया। शरीरमें बीस वर्ष पुरानी स्फूर्ति आ गई थी।

एक महाराजा

जिनकी आयु २८ वर्षकी थी। अत्यन्त क्षीण, निस्तेज तथा क्षयके लक्षणोंसे पूर्ण। जब इनका इलाज किया गया तो उनके चारों ओरके वातावरणका विशेष ध्यान रखा गया। छोटे-छोटे बालकोंका सम्पर्क, प्रौढ़ तथा प्रसन्नचित्त परिचारिकायें भक्ति संगीतकी स्वर लहरियाँ उद्यानमें तुलसी मरवा, नीलगिरी अशोक नीम आदिका आधिक्य, सब प्रकार व्यवस्थाकी गई। सात्विक किन्तु रोचक साहित्यका श्रवण कराया गया।

योगासन, मालिश तथा आयुर्वेदकी कुछ औषधियोंके साथ उनके आहारमें जिस दूध का प्रयोग हुआ वह सबसे मुख्य बात थी।

चार रंगकी चार गायें रखी गई। उनकी सेवा और स्वच्छता का पूरा प्रबन्ध हुआ। काली गायको शतावर चूर्ण, पीली गायको गोक्षुर चूर्ण सफेद गायको अश्वगंधा चूर्ण तथा चितकारी गायको इलायची और बादाम एक निश्चित प्रमाणमें खिलाए गए। चारों गायोंका दूध मिश्रण करके केसर, वंशलोचन और मिश्रीके साथ महाराजा साहबको दिया गया। केवल ६० दिनके प्रयोगमें उनके चेहरे पर लावण्य आ गया; आँखोंमें तेज, वचन में वृद्धि तथा शरीरमें और मनमें स्फूर्ति भर गई। एक मास तक और यह प्रयोग चलता रहा। महाराजने कई विवाह किये और ५८ वर्षकी आयु प्राप्त की। उनकी सभी सन्तानें सुन्दर और स्वस्थ थीं।

दूध का एक गिलास सैकड़ों रुपये का

बम्बई के एक विख्यात राजवैद्यका यह प्रयोग है। माथेरानकी पहाड़ियों पर

लगभग सौ गायें पाली गई इनमें सात चुनली गई जो सर्वथा स्वस्थ थीं। प्रत्येक गायको अलग-अलग प्रकारके पौष्टिक मेवे और औषधियाँ खिलाई जाती थीं। जैसे—एकको पिस्ते, दूसरीको बादाम, तीसरीको इलायची, चौथीको शतावर, पाँचवीको विदारीकंद, छटीको गोक्षुर और सातवींको असगंध आदि औषधियाँ और मेवेका प्रमाण भी निश्चित किया हुआ था। इसके पश्चात् एक गायका दूसरीको दूसरीका तीसरीको और अन्त में काली गायका जो दूध निकलता था उसका प्रयोग एक वृद्ध व्यापारी पर किया गया, जिसके सात-आठ सन्तान थीं। इस प्रयोगका यह परिणाम हुआ कि यह वृद्ध व्यापारी पुन: नवयौवन-सा उत्साह व शक्ति प्राप्त करके आजीवन स्वस्थ रहे।

हिसाब लगाने पर इस दूधके एक गिलासका मूल्य सैकड़ों रुपये हुआ। जिन्होंने उक्त व्यापारीके घर कभी छाछ पी उन्हें उसमें भी इलायचीकी सुगन्ध और पिस्ते बादाम का स्वाद मिला।

प्राचीन परम्परा

भारतके प्राय: सभी प्रान्तोंमें प्रसूता-स्त्रीके पथ्यकी विशेष देख भाल रखी जाती है। उसके आहारका परिणाम बालकके स्वास्थ्यपर पड़ता है। यदि बच्चेको सर्दी हो जाय तो माताको सोंठ अजवाइन विशेषत:दी जाती है। यदि दस्त लगें तो माताको गरिष्ट पदार्थ बंद करके सुपाच्य आहार दिया जाता है बालकके अनेक रोग माताके आहारमें परिवर्तन करके उसके दुग्धके माध्यमसे दूर किये जाते हैं। यदि आंख आ गई हो तो मांके दूधकी धार आंखमें डाली जाती है और रुई के फाहेमें दूध भिगोकर आंख में लगाया जाता है।

एकगाय और योगी

घटना स्व० पं० सातवलेकरजी के आश्रम की है। उसके आनन्दाश्रममें एक योगी अभ्यासके लिए ३–४ मासके लिए आये। जब वे एकान्तमें ध्यान लगाते तो उन्हें एकाग्रता नहीं मिलती। एक उद्विग्नता-सी रहती। वे केवल दूध पर ही रहते थे। बादमें पण्डितजीकी सलाहसे उन्होंने यह पता लगाया कि दूध जिस परिवारसे आता है वहांका वातावरण कैसा है? उन्हें पता चला कि उस परिवारमें भयंकर कलह, मारपीट होती थी।

इस स्थितिमें योगीजी ने यह निश्चय किया कि स्वयं गाय पाली जाय। ऐसा होने पर परिणाम यह हुआ कि योगीको अपनी साधनामें पूरी शान्ति और सफलता मिली।

कायाकल्प और गौदुग्ध

हमने अनेक ऐसे व्यक्ति देखे हैं जिन्होंने केवल गौदुग्धके प्रयोगसे अपनी आयुके ५० वें वर्षके बाद भी पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया किया और दीर्घ आयु तक वे पूर्ण स्वस्थ रहे। तीस दिन, साठ दिन, नब्बे दिन, एवं १२० दिनके प्रयोग हैं। सुयोग्य चिकित्सककी देख-रेखमें ऐसे प्रयोग किये जायें तो यह निश्चित है कि सभी प्रकारके प्रमेह भगंदर, हृदय दौर्बल्य, रक्तचाप, कुष्ठ जैसी भयंकर व्याधियोंसे भी मनुष्य मुक्त हो सकता है। गौदुग्ध द्वारा किस प्रकारसे रोगोंको दूर किया जाय तथा किस प्रकार पुनः स्वास्थ्य व यौवन प्राप्त किया जाय, यह एक अत्यन्त रोचक अनुसंधान का विषय है। नये-नये प्रयोग इस दिशामें होने आवश्यक हैं।

गायोंपर संगीत, स्वच्छता सद्व्यवहार या सेवा आदिका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। गायोंके रंग का भी चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से बड़ा महत्व है।

संसारके अनेक शारीरिक और मानसिक कष्टोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिए माता की तरह गाय का आश्रय ले लिया जाय और किसी सुयोग्य अनुभवी चिकित्सक की छत्र-छायामें प्रयोग किए जायें तो यह निश्चित है कि पृथ्वी-लोकके अमृत इस गौ-दुग्धसे अनेक चमत्कार सामने आ सकते हैं।



जैसे प्रत्येक शरीरकी आयु है, आयु पूरी होने पर चेतना शरीरको त्याग देती है, शरीर किसी कारण नष्ट भी हो जाय तो यही होता है, वैसे ही वस्तु या भवन के नष्ट होने पर तो उसका अधिदेवता स्थानान्तरण कर ही लेता है, वस्तु या भवनके यथावत रहते भी उसका देवता आयु पूरी होने से उसे त्याग देता है। ऐसा होने पर वह वस्तु, वह भवन, वह ग्राम अशान्तिप्रद तथा विना कारण उपयोग कर्त्ताके कष्टका कारण बन जाता है। उसको नष्ट ही होना है। उसकी मरम्मत नहीं की जा सकती।

संस्मरण-

जीवनमें कुछ ऐसी अद्‌भुत बातें होती हैं; जिनका कोई अर्थ हम भले न निकाल सकें; किन्तु वे पुनर्जन्म जन्मान्तरके संस्कार सिद्ध करती हैं और यह भी कि जगत उतना ही नहीं है जितना हम देखते या जानते हैं। बहुत सी अदृश्य शक्तियाँ हैं और उनमें यदि कोई हमें हानि पहुँचाने वाली होगी तो हमें सहायता, संकेत और मार्गदर्शन देने वाली शक्तियाँ भी कम नहीं हैं।

घास में सोता था

तीन या चार वर्षकी आयुसे ही पिताजी मुझे अपने पास छोटे खटोलेपर सुलाने लगे थे। घरके भीतर माँके समीप सोनेकी मेरे मनमें कोई स्मृति नहीं है।

गाँवके किसानका कच्चा घर था। गाय-बैल थे। वे शामको जहाँ बाँधे जाते थे, उनके सामने चरनी थी खूब लम्बी। उनमें प्रत्येक पशुके लिए नांद जमायी गयी थी और दो नाँदोंके मध्य घास डालनेको स्थान था। चरनी इतनी ऊँची थी कि पशुओंको मुख बहुत न झुकाना पड़े।

पता नहीं क्यों और कैसे मैं सोते सोते उठकर चल देता था और किनारेकी नांदके सहारे ऊपर चढ़कर चरनीमें बड़ी गायके सामने घास पर सो जाता था।

यह स्वभाव कई वर्ष बना रहा। पहिली बार तो मुझे खूब ढूंढ़ा गया। डराया भी गया — गाय काट लेगी।' एक दो बार गायने खड़ी होकर सूंघा या चाटा तो मैं हाथसे उसका मुख हटा देता था।

कोई पुकारता था

कोई नौ वर्षका होऊँगा। जहाँ सोया था, वहांसे उत्तर दिशासे किसीने दोबार नाम लेकर मुझे पुकारा तब जब मैं गहरी नींदमें था। पहिली बार पुकारते ही नींद टूट गयी। दूसरी बारकी पुकारपर मैं बोला पड़ा था—हां! आँख खोलकर उठ बैठा था।

पिताजीके पूछनेपर मैंने बताया— किसीने पुकारा है?'

उन्होंने पूछा—'तू डरता है?'

'नहीं' मैंने कहा था। डर कभी नहीं लगा। वह पुकार तो झूसी अखण्ड संकीर्तनमें आने पर बन्द हुई। पन्द्रह दिनसे महीने तकका अन्तर पुकारने में पड़ता था। सदा दो बार केवल नाम लिया जाता था। वही उत्तर दिशासे और लगता था

कि उतनी ही दूरीसे पुकारा गया है। भले वहाँ उतनी दूरी दीवारके कारण न हो। सदा तभी पुकारा गया जब मैं गहरी नींदमें होता था।

स्वर मधुर था, पर स्त्री कंठ नहीं। पुकारके स्वरमें स्नेह लगता था। जीवनमें मुझे वह स्वर सुननेको जानते हुए कहीं नहीं मिला।

आदेश

बहुत बुरा लगा जब नींद टूटी और देखता हूँ कि सूर्योदय होनेवाला है। मैं सवेरे जल्दी उठना पसन्द करता हूं। उन दिन रामवन (सतना) में स्वप्न देखता देर तक सोया पड़ा रह गया था।

'गोपाल सहस्र नामका पाठ किया करो!' स्वप्नमें एक गोरे रंगके, सफेद दाढ़ी, सफेद वस्त्रोंवाले पंडितसे लगने व्यक्तिने आदेश दिया था।

मैंने उस आदेशकी उपेक्षा की; किन्तु वह स्वप्न तो पीछे ही पड़ गया। आठसे दस दिन पर वही व्यक्ति स्वप्नमें दीखता और वही आदेश देता। स्वप्नवाले दिन मैं जागता तो पाता कि सूर्योदय होने ही वाला है।

इस प्रकार देरसे उठना मुझे अखरने लगा। अतः मैंने 'गोपाल सहस्र नाम' की पुस्तक मंगाली। पाठ प्रारम्भ किया, तब से वह स्वप्न फिर नहीं आया। अनेक वर्षों तक वह पाठ करता रहा, फिर छोड़ दिया। 卐

शेषांश पृष्ठ २० का

याक घास चरता है। लेकिन पशुओंको मारकर उनको पैरोंसे रौंदता है। अपने खुर लाल करनेका उसे शौक होता है। तिब्बतीकी बात सुनकर याकने रास्ता छोड़ दिया। अब जल्दी-जल्दी तिब्बती चला। गुफामें ध्यान लगाये बैठे लामाके आगे भेंड़ खड़ी करके वह पृथ्वीमें दण्डवत-लेट गया।

'तुम्हारा कल्याण हो!' यह आशीर्वाद सुनकर उसने सिर उठाया तो लामा अदृश्य हो गये थे और उसकी भेंड़ भी वहाँ नहीं थी। उसे क्या पता कि उसे दर्शन देने भगवान शंकर लामा बने बैठे थे।

तिब्बती लौटा। याक मिला तो चाकूसे अपना बायाँ हाथ चीर कर उसने याकके चारों खुर रंग दिए। याक बोला—'तुम्हारे पास सदा बहुत याक रहेंगे।'

तिब्बती कैसे समझता कि वह शफेद भारी याक तो शिवका नादिया है। वह पहाड़ी उतर रहा था कि सिंह आ गया। यह देवीका वाहन आया तो उसे देखकर तिब्बतीने छुरेसे अपना हाथ काटनेका प्रयत्न किया। सिंह बोला—'हाथ मत काटो मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुमको कभी कोई रोग नहीं होगा।'

घर लौटनेपर रातमें पेट पर चूहा कूदा। तिब्बती चौंक कर जागा। उसने छुरेसे अपने बड़े केश काटकर चूहेको दे दिये। चूहा बोला—'तुम्हारी भेड़ोंमें ऊन और बकरियोंमें पश्मीना अब चार गुना हुआ करेगा।'

तिब्बतमें वह तिब्बती बहुत दिनों तक सबसे धनी और स्वस्थ बना रहा। 卐

भारतका मुसलमान दिलसे गोरक्षाका पूर्ण समर्थक है

[प्रो० हैदरअली खां]

गोरक्षाके निमित्त आचार्य विनोबा भावेने जनवरी १९७९ से आमरण अनशन करनेका संकल्प किया था, किन्तु सर्वोदय कार्यकर्त्ताओंके अनुरोधपर १११ दिनोंके लिए इसे स्थगित कर दिया। विनोबाजी गो-सेवाको जीवनका एक आवश्यक अंग मानते हैं। उनका अभिमत है कि मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति गो-सेवासे भी हो सकती है इसीलिए उन्होंने कहा कि 'गायकी रक्षा करो, सबकी रक्षा हो जायेगी।"

भारत एक कृषि-प्रदान देश है। कृषिमें गायकी भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। गायसे बैल प्राप्त होते हैं, जो भारतीय खेतोंके लिए आधारशिला ही हैं, गायसे दूध प्राप्त होता है, जो रुचिकर, स्वास्थ्यवर्द्धक तथा जीवनदायी है। गायके मल-मूत्र तथा हड्डीसे भूमि उर्वराशक्ति बढ़ जाती है। मरणोपरान्त उसके चमड़ेसे अनेक उपयोगी चीजें बनती हैं। गायको हिन्दुओंमें महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गोरक्षाका जहाँ एक एक ओर धार्मिक महत्व है, वहीं दूसरी ओर उसका आर्थिक महत्व भी है।

भारतीय संविधानके अनुच्छेद ४८ में गो-रक्षाका प्रावधान है। किन्तु पशुपालन विषय राज्योंसे सम्बन्धित होनेके कारण संविधानका असली रूप राज्योंपर छोड़ दिया गया है। केरल तथा बंगालको छोड़कर समस्त राज्योंमें गो-रक्षा सम्बन्धी पर्याप्त कानून बन चुके हैं। केरलमें भी व्यवहारता गायोंका वध नहीं होता। अतः यह समस्या मुख्य रूपसे पश्चिमी बंगालसे सम्बन्धित हैं, जहाँ पर्याप्त नियम नहीं है। इस स्थितिमें ऊपरी तौरसे ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँके मुसलमान गो-रक्षाकी दिशामें बाधक होंगे। अतः समस्यापर इस सन्दर्भमें विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

गो-रक्षा तथा मुसलमान

मुसलमानोंके लिए सामिष भोजन धर्मसंगत है। यहाँ तक कि गो-मांस भी वर्जित नहीं है किन्तु मांस खाना न तो आवश्यक है और न ये ही आवश्यक है कि इदुजोहा पर्व [बकरीद] पर गायकी ही कुर्बानी की जाय। गायसे हिन्दू धर्मावलम्बियोंका प्रगाढ़ सम्बन्ध है तथा गोहत्यासे उन्हें कष्ट होता है, अतः इस्लामकी शिक्षानुसार पड़ोसी-धर्मके नाते तथा उदारता एवं सहिष्णुता वश गोवध अथवा गायकी कुर्बानीसे विरत रहना ही मुसलमान श्रेयष्कर मानते है। ※

मुँह डाल! खा !

'नीलमणि ! श्यामसुन्दर !' मैया पुचकारकर पुकार रही है—'तेरा दादा कलेऊ करने बैठा है, तू नहीं खायगा ?'

मैयाको अपने इस चपलको मनाकर कुछ खिला पाना सदा बहुत कठिन पड़ता है। यह दो वर्षका कन्हाई खेलनेमें ही लगा रहता है। इसे मनाकर पुचकारकर किसी प्रकार खिला न दो तो इसे अपने पेटकी भूखका पता ही नहीं लगता। अब सबेरेसे बालकोंके साथ आँगनमें दोनों हाथ फैलाकर गोल-गोल घूमनेमें लगा हैं। ये बालक घूमते हैं और फिर गिर पड़ते हैं। फिर उठते हैं और घूमते हैं।

दाऊही कहाँ छोटे भाईके बिना कलेऊ करने वाला हैं; किन्तु उसे किसी प्रकार मैया ने बैठा लिया है—'तुम कलेऊ करने बैठो तो तुम्हारा अनुजभी कुछ खा लेगा।' दाऊ माखन रोटी पर धरे कन्हाईकी प्रतीक्षा करता बैठा है।

'दादा कलेऊ करने बैठा है' मैयाकी यह बात कामकर गयी। कन्हाई लद्‌बद् दौड़ा आया है और वैसे ही धूलि-धूसर बड़े भाईसे सटकर बैठ गया है। इसने अपना नन्हा मुख खोल दिया है। दादा अब इसे खिलावे।

दाऊ ने तनिकसी रोटी तोड़ी, तनिकसा मक्खन लगाया और श्यामके मुखमें दे दिया। मुखमें तो वह नन्हा मक्खन सना रोटीका टुकड़ा लेकर मुख चलाते अब इसने दाहिने हाथकी दो अंगुलियों और अंगूठे से रोटीका टुकड़ा तोड़ा है। उसपर मक्खन उठाया है। यह ग्रास तो यह अपने दादाके मुखमें देगा ही।

विशाल, अर्जुन, ऋषभ, भद्र वरूथप—अनेक सखा अब समीप दौड़ आये है। घुटनों सरकने वाले भी खिसक आये हैं। अब इन बालकोंमें कौन किसके मुखमें ग्रास देगा, यह नियम तो चल नहीं सकता; किन्तु कोई अपने मुखमें ग्रास नहीं दे रहा।

'नीलमणि ! मैं भी भूखी हूँ।' यह कोई गोपी समीप आ गयी, 'तू मुझे नहीं खिलायेगा ?'

भला क्यों नहीं खिलायेगा ? श्री व्रजराजकुमार कोई कृपण है कि कोई भूखा भोजन मांगे तो यह नहीं देगा। इसने दो अंगुली और अंगूठेसे वही नन्हा रोटीका टुकड़ा तोड़ा, मक्खन लगाया और गोपीकी ओर बढ़ाया; किन्तु नन्हा कन्हाई बैठा है यह तो खड़ी है। इसके मुख तक श्यामसुन्दरका हाथ कैसे पहुँचे।

'तू देखता नहीं कि मैं कितनी बड़ी हूँ।' गोपीने कहा—'इतनी तनिक-सी रोटीसे मेरा पेट भरेगा ?

कन्हाईने सिर उठाकर देखा—सचमुच यह खूब बड़ी है। इसका पेट इतने छोटे टुकड़ेसे कैसे भरेगा ?

वह टुकड़ा अपने मुखमें डालकर मोहन उठ खड़ा हुआ। इसने गोपीका वस्त्र पकड़ा-'चल !'

मैया खड़ी देख रही है। गोपी इसके साथ चल पड़ी है। देखता है कि यह कहाँ ले जाता है।

कन्हाईने देखा है कि उसके गोष्ठ की गायें और वृषभ खूब बड़े हैं, वे नांदमें मुख डालकर स्वयं खाते हैं। उनके मुखमें तो कोई ग्रास नहीं देता यह गोपी भी खूब बड़ी है, तगड़ी है। तब इसके मुखमें ग्रास देनेसे इसका पेट कैसे भरेगा ?

खूब बड़ा मटका दहीसे भरा धरा है। पता नहीं कन्हाईने कब इसे देखा है। मटका इतना बड़ा है कि कन्हाई खड़ा है तो भी मटका ही उससे बड़ा है। गोपीको वह उसके समीप ले जाकर खड़ा करके बोला—'खा ले !'

'तू देखता नहीं कि मेरे हाथोंमें मेहँदी लगी है। मैं कैसे खाऊँगी।' गोपीने अपनी दोनों हथेलियां श्यामसुन्दरके आगे फैलाकर दिखलायीं। सचमुच उसकी हथेलियों पर तो गीली मेंहदी लगी है।

'हाथ में ही तो मेहँदी लगी है।' कन्हाई को यह कोई समस्या नहीं जान पड़ती। उसकी गायोंमें से तो कोई हाथसे खाती नहीं। हाथसे तो उसके जैसे थोड़ा खाने वाले खाते हैं। इसने गोपीकी ओर मुख उठाया और तनिक डांटतासा बोला—'मुख डाल इसमें और खा।'

अब पता नहीं क्यों मैया हँसने लगी है और यह गोपी भी हँस रही है, यह झूठी है। इसे भूख लगी होती तो हँसती कैसे ? जिसे भूख लगती है, वह तो रोता है। कन्हाई इसे छोड़कर फिर अपने दादाके पास सखा मण्डलीमें पहुँचने मुड़ चला है।



होली

होली आई ! होली आई !
धूल उड़ाती ! रंग उड़ाती !!
ले आयी उत्साह !
वाह वा वाह !!

गाँव-गाँवमें धूम मचायी,
व्रज-बरसाने लट्ठ खड़कायी !
कूदो बेपरवाह !
वाह वा वाह !!

रंग के छींटे, व्यंग के छींटे,
गली गली बौछार।
मस्ती का त्यौहार ॥

चपल कन्हाई धूम मचावे,
जीवनमें—अन्तरमें आवे।
भुजभरि भेंटे-अंक लगावे,
आम्र-मञ्जुरी झलक सजावे ॥
आनन्दपूर अथाह !!
वाह वा वाह !!



मुक्तिकी चार अवस्थाएँ

ज्ञानपूर्णो वियोगो योऽज्ञानेन सह योगिनः ।
सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः ॥

अज्ञानीका साथ ज्ञानपूर्वक छोड़ देना ही मुक्ति है और प्रकृतिके गुणोंसे अलग रहना ब्रह्मकी एकता है ।

कर्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः ।
चेतसोऽपकषायत्वं यत्र सा स्वस्तिरुच्यते ॥
ऐहिकामुष्मिकान् कामान् लोभमोहात्मकात्स्वयम् ।
निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्वकालिकी ॥
अतीतानागतानर्थान् विप्रकृष्ट - तिरोहितान् ।
विजानातीन्दुसूर्यर्क्ष - ग्रहाणां ज्ञानसम्पदा ॥
तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति सम्पदम् ।
तदा संविदिति ख्याता प्राणायामस्य संस्थितिः ॥
यान्ति प्रसाद येनास्य मनः पञ्च च वायवः ।
इन्द्रयाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥

अच्छे या बुरे कर्मोंके फलसे चित्तको हटानेको स्वस्ति कहते हैं ।

इस लोक और परलोकके लोभका तथा मोह पैदा करनेवाले कामका निरोध करनेवाले योगियोंकी प्राप्ति होती है ।

ज्ञान द्वारा अतीत और अनागत अर्थोंको क्रमशः उत्तम और अनुचित समझें; चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहोंका प्रभाव समान समझें तथा जब योगी इस समान भवको प्राप्त होता है तब प्राणायामकी संस्थिति संवित्-अवस्था होती है ।

जिस प्राणायामसे मन, पाँचों वायु, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके अर्थ—सब प्रसन्न रहें, वह प्रसाद-अवस्था है ।

(मार्कण्डेयपुराण ३९.१.२१—२६)

—रामलाल

'श्रीकृष्ण-सन्देश' नामक हिन्दी मासिक पत्र

के सम्बन्धमें

प्रपत्र ४-नियम ८

१. प्रकाशन स्थान-	श्रीकृष्ण जन्म-स्थान, मथुरा
२. प्रकाशनकी आवृत्ति	मासिक
३. मुद्रकका नाम	मनोहर लाल पाठक
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	श्रीकृष्ण जन्म-स्थान, मथुरा
४. प्रकाशकका नाम	मनोहर लाल पाठक
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	श्रीकृष्ण जन्म-स्थान, मथुरा
५. सम्पादकका नाम	सुदर्शनसिंह 'चक्र'
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	श्रीकृष्ण जन्म-स्थान, मथुरा
६. उन व्यक्तियोंके नाम जो इस पत्रके मालिक हैं अथवा इसकी कुल पूंजीके एक प्रतिशतसे अधिकके भागीदार हैं।	श्रीकृष्ण जन्म-स्थान, सेवा-संस्थान [१८६० के विधानके अनुसार पंजीकृत संस्था]

मैं मनोहर लाल पाठक इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

मार्च १९८१ (ह०) मनोहर लाल पाठक

श्रद्धा और त्याग

उस समय तक तिब्बतमें चीनका प्रभुत्व नहीं हुआ था। दलाई लामा ल्हासामें रहते थे। तिब्बतके मनमें दूर पहाड़ीपर रहने वाले तपस्वी लामाके दर्शनकी इच्छा हुई। उसने सुना था कि पहाड़ीकी गुफामें बहुत पुराने तपस्वी लामा रहते हैं।

पहाड़ी बहुत दूर थी। बहुत ऊँची थी। वहाँ जानेका कोई रास्ता नहीं था। कोई नहीं कहता था कि वहाँ गया है। लेकिन उस तिब्बतीके मनमें लामा (बौद्ध साधु) के दर्शनकी प्रबलकी इच्छा थी। उसने अपनी स्त्रीको भेंट और याकोंका भार सौंपा। खूब सारी पनीर रास्तेमें भोजनके लिए बाँधली। एक मोटी सफेद भेंड़ पहिले दिन भेंड़ोंके झुंडमें-से छाँटकर बांध दी। भेंट करना चाहता था।

रातमें एक चूहा निकला। तिब्बतीके पेटपर कूदा। तिब्बती जागा तो चूहा बोला—'इस भेंडकी ऊन दो। मेरी चुहियाने बच्चे दिये हैं। मैं उनको जाड़े से बचाऊँगा।'

तिब्बती बोला—'भेड़ लामाकी है। सात दिन काम चलाओ। लौटकर आने पर तुम्हें अपने सिरके बाल दूँगा।'

चूहेको विदा करके वह रातमें ही भेंड़ लेकर चल पड़ा। ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ बिना रास्तेके चढ़नी थीं उसे। भूख लगने पर पत्थरका चूल्हा बनाकर झाड़ियोंसे लायी लकड़ी जलाता। अपनी पतीलीमें चाय बनाकर पीता और थोड़ा सत्तू चाटता थोड़ी पनीर खाता। खुली पहाड़ी पर रातमें अपना चमड़ेका कोट पहने सो जाता। भेंड़ भी घास चरती, पानी पीती और रातमें उससे सटकर सोती।

तीसरे दिन एक सफेद सिंह मिला। तिब्बतीके सामने आकर गरजा और बोला—'भूखा हूँ। भेड़ मुझे दे दो।'

तिब्बती—'भेंड़ लामाकी है। तीन दिन रुको। लौट कर तुम्हें अपना एक हाथ खिला दूँगा।'

सिंह चला गया। तिब्बती आगे बढ़ा। पहाड़ी पर गुफा दीखने लगी। तभी एक जंगली याक (चँवर गायका नर) आया। बोला—'भेंड़ मुझे दे दो!

तिब्बती बहुत डर गया था। जङ्गली याक तो शेर को भी लड़ कर मार देता है। किसी प्रकार डरते-डरते बोला—भेंड़ लामाकी है। कल तक रुको, मैं लौटकर तुम्हारे खुर अपने खूनसे लाल कर दूँगा।'

(शेष पृष्ठ १२ पर)

७३. श्रीभरतलाल--

'सीता अनुज सहित प्रभु आवत ।'

श्रीभरतलालके श्रवणोंमें पवनकुमारकी वाणी पड़ी, प्राणोंने जैसे नवजीवन पाया ।

'सत्य कहते हो आञ्जनेय ! प्रभु आ रहे हैं ? मेरे वे कृपासिन्धु स्वामी पधार रहे हैं ?' शब्द नहीं व्यक्त हो सके । कण्ठ गद्गद, शरीर पुलकित, नेत्रोंसे वारि धारा; किन्तु रोम-रोम यही कह रहा है, यह समझना नहीं था पवनकुमारको, 'अवश्य वे दयामय आ रहे हैं । अपनोंको विस्मृत करना उन्हें आता नहीं । अपने दर्शनोंके पिपासु प्राणोंको उन्होंने कभी निराश नहीं किया है ।'

'कहाँ हैं वे ? कितनी दूर हैं अयोध्यासे ?' श्रीभरत पूछ सकते तो अवश्य यही पूछते, किन्तु उनका शरीर तो सहसा हिलनेकी स्थितिमें भी नहीं रह गया । उनके अधर हिल नहीं पाते थे । नेत्र पलक निस्पन्द हो गये थे । वे देख रहे थे पवनकुमारकी ओर और सुन रहे थे उनकी दिव्य वाणी । प्राण श्रवणोंमें आगये थे । श्रवण, केवल श्रवणेन्द्रिय रह गये थे भरतलाल उस क्षण ।

पूछनेकी आवश्यकता भी कहाँ थी । श्रीमारुति—वे 'ज्ञानिनामग्रगण्य' उन्होंने स्वयं वह सब सुनाया जो अयोध्याका कोई जन पूछना या जानना चाहे । श्रीराम कहाँ हैं, कैसे हैं, कब पहुंच सकते हैं, किसी प्रकारकी त्वरा है उनके स्वयंके चित्तमें, लङ्काका संग्राम कैसे समाप्त हुआ, श्रीरामचरितके ऐसे रसज्ञ श्रोता वक्ता मिलजायें, किन्तु श्रीमारुतिको अपने प्रभुकी शीघ्र लौटनेकी आज्ञा थी । वे संक्षिप्त ही सुना सकते थे । थोड़े शब्दोंमें उन्होंने सब कुछ सुना दिया है ।

'प्रभु आ रहे हैं ।' भरतलालने सिंहासनस्थ पादुका पर मस्तक रख दिया । वे भाव-विह्वल हो उठे जब मारुतिने आज्ञा चाही थी लौटनेकी ।

'भरतके दोष नहीं देखे उन्होंने । अपनोंके दोष उन्होंने । कभी देखे नहीं हैं । देख पाते ही नहीं है ।' भावोंका अपार प्रवाह उमड़ रहा है—'धन्य होगया भरत ! इसका अपराध भी आज सेवाके रूपमें स्वीकार होगया । सेवा—अब उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त होगा ।'

भरत क्या कहें, क्या करें वे समझ नहीं पाते। बार-बार चरणपादुका पर मस्तक रखते हैं और उसे अश्रुजलसे क्षालित करते हैं।

सबके प्राण प्यासे हैं। अयोध्याका जन-जन आतुर है इस सुसम्वादके लिए।' सहसा चेतना सावधान हुई 'प्रभु प्रातः पधार रहे हैं। समय रहा ही कितना है अब।'

'कुमार!' अपने सम्मुख करबद्ध, आनन्द-विह्वल अनुजकी ओर भरतने देखा, 'तुम माताओंको यह सुम्वाद श्रवण करानेका सौभाग्य प्राप्त करो। महामन्त्री नगरमें घोषणा करा देंगे।'

'आर्य आज भी अयोध्या नहीं पधारेंगे ?' कुमार शत्रुघ्नका स्वर काँप रहा था।

'भरत अपने अग्रजके श्रीचरणोंका अनुसरण करता अयोध्या आवेगा।' जहाँसे श्रीरामको निर्वासित किया गया, वहाँ भरत जायँगे तो अवधके सिंहासनके अधीश्वर श्रीरामके साथ ही जायँगे, अपना यह सङ्कल्प उन्होंने भले व्यक्त न किया हो किसी पर, उनका नन्दिग्रामका निवास क्या कुछ नहीं कहता ?

'अपने अग्रजको अधिक सौभाग्य भाजन बननेका अवसर तुमने अब तक दिया है कुमार।' अपार स्नेह था स्वरमें 'आज भी भरत तुमसे ऐसी आशा करे, अस्वाभाविक तो नहीं है। कुलगुरुको सम्वाद स्वयं देना चाहता है भरत।'

'रथ प्रस्तुत है आर्य।' कुमारने प्रसन्न मनसे स्वीकार किया अपने तपस्वी अग्रजका आदेश। 'शत्रुघ्न राजसदन होकर महर्षिके आश्रम शीघ्र आरहा है।'

'भरत पदोंसे जा पाता, किन्तु समय अल्प है और उसका आज मूल्य नहीं किया जा सकता।' अनुजका आग्रह स्वीकार हो गया 'महर्षि सम्भवतः स्वयं राजसदन पधारेंगे प्रातःकालसे पूर्व।'

कुमार शत्रुघ्नका अश्व दो क्षण बीतते बीतते अयोध्याकी ओर उड़ा जारहा था। महामन्त्री सुमन्त्र आज रथमें अकेले जारहे थे नगरकी ओर और एक दूसरा रथ भी नन्दिग्रामकी पर्णकुटीके द्वारसे प्रस्थान करनेवाला था।

नन्दिग्रामका वह महातापस, कृशकाय, जटाधारी वल्कल-वसन, वह नवदूर्वादल श्याम तेजोमूर्ति, उसने मस्तक पर धारण कर रखी हैं श्रीरघुनाथकी चरण पादुकाएँ और रथमें बैठते वह इतना संकुचित होरहा है, इस रथको जाना है महर्षि वशिष्ठके आश्रमकी ओर।

—×—

७४. कुमार शत्रुघ्न—

'आज सफल हुआ शत्रुघ्नका श्रम ।' कुमार शत्रुघ्नका अश्व नन्दिग्रामसे अयोध्याकी ओर उड़ा जा रहा था । लेकिन मनका वेग, कोई अश्व उसे कैसे पासकता है ।' चौदह वर्ष जिस स्मितका, प्रसन्न वदन अपनेको दिखालानेका अभिनय किया मैंने आज वह सत्य बना । आज माँके सम्मुख सचमुच प्रसन्न जा सकूँगा ।'

'पूरे चतुर्दश वर्षका अभिनय, मातायें समझती थीं, भाभियाँ समझती थीं, वे सब समझती थीं और फिर भी मैं अभिनय किए जारहा था । आज वह अभिनय'''' लेकिन गतकी वेदना आगतके हर्षमें डूबकर आज हर्ष बन गयी है ।

'प्रभु आरहे हैं ।' मांका, वात्सल्यमयी माँका आनन्द देख पावेगा यह सम्वाद देकर शत्रुघ्न । वे महिमामयी, निश्चय वे गोदमें खींच लेंगी और इस प्रकार स्नेह करने लगेंगी जैसे कुमार ही उनके राम हैं ।' अन्तरमें अद्भुत चित्र आरहे हैं ।

'मेरी जननी, सम्भवतः वे कुछ न कह रुकें । वे तो अपना कोमल कर मस्तक पर रख दें तो बहुत है । 'सम्वाद दे चुका सबको ? स्वागतकी प्रस्तुति कर वत्स ।' उनके गद्गद् स्वरोंसे इसके अतिरिक्त कुछ सुन पानेकी आशा कम ही है ।' किन्तु माता कैकेयीकी क्या अवस्था होगी ?' श्रीभरत-जननीका व्यक्तित्व अद्भुत है और उनकी जो परिस्थिति बन गयी है, कुमार शत्रुघ्न उनके सम्बन्धमें कोई अनुमान नहीं लगा पाते ।

'भाभी, लेकिन दोनों ही भाभियाँ तो अत्यन्त गम्भीर हैं । वे तपोमूर्तियाँ, मझली भाभीकी स्नेहाशीष प्राप्त होगी । सदाका कुमारका वह स्वत्व और छोटी भाभी, आज यदि वे अनुरोध स्वीकार करलें । उनका तापस वेश क्या शोभा देगा आज ? किन्तु''''।' कुछ ठीक समझमें नहीं आता कि उचित क्या होगा ।

'वह सरला ?' एक सुकुमार मूर्ति और मानसमें आयी—'पूरे चतुर्दश वर्ष अन्तरके अनलको अन्तर्हित किये सुप्रसन्न सुसज्ज बनी रहनेवाली वह सहयोगिनी, आज उसके अधरों पर वास्तविक स्मित दीख सकेगा ।' केवल स्मित दर्शन ही, अग्रजोंके साथ ही जिनका सुखमें स्वत्व है, आज अवकाश ही कहाँ है । आजके उल्लासके दिन किसे दो क्षण स्थिर होनेको समय मिल सकता है ।

आज कुमारके अश्वका वेग, नगर जन इस वेग और आरोहीके श्रीमुखकी कांतिसे ही चिर प्रतीक्षित सम्वाद पा जायें सहज सम्भव है । कुमारको किसी नगरजनने

कभी साश्रु नेत्र, म्लान वदन तो कभी नहीं देखा, किन्तु जो आनन्द आज फूटा पड़ता है उनके श्रीमुख पर····।

'कुमार नन्दिग्रामसे आगये। अश्रु त-पूर्व वेगसे आया है आज उनका अश्व। कुमारने आज अश्व राजसदनके महाद्वार पर नहीं छोड़ा है। वे सीधे महालयमें गए हैं।' सम्वादके प्रसारित होनेमें विलम्ब कहाँ होना था—'सम्भवतः श्रीरघुनाथके आनेका सम्वाद प्राप्त होगया। कुमार राज माताके समीप सीधे गये हैं।'

पुरजनोंका उत्सुक समुदाय राज-महालयके सम्मुख एकत्र होने लगा है, बढ़ता जारहा है। उसके प्राण कबसे जिस सम्वादकी प्रतीक्षा कर रहे हैं····।

'माँ!' अश्वसे कूदकर कुमार दौड़ पड़े थे और उनका प्रफुल्ल वदन—'प्रभु आरहे हैं।' जैसे हर्षने उनके शरीरमें शैशवका आविर्भाव कर दिया है। वे सम्वाद सुनाने शिशुकी भाँति दौड़ गए हैं। दौड़ रहे हैं आज कुमार शत्रुघ्न।

'जननी! प्रभु आरहे हैं।' कुमारने दो क्षण तो दिया होता किसी सदनमें—'कब आरहे हैं? कैसे आ रहे हैं?' पता नहीं कितना पूछना है, क्या पूछना है, किन्तु कुमार तो आज आनन्दके उद्रेकमें शिशु बन गए हैं।

'मातः! प्रभु आरहे हैं।' वे तो सुनाते हैं यह सुसम्वाद, और दूसरे सदनमें दौड़ जाते हैं। 'अरे! सुन तो कुमार!' किन्तु कुमारका जागृत शैशव आज उन्हे सुनने दें तब तो।

'प्रभु आरहे हैं! प्रभु आरहे हैं भाभी!' कुमारको पूरे अन्तःपुरमें आज दौड़ लगा लेनी है 'प्रभु आ रहे हैं।' अपने अन्तःपुरमें भी उनके पद वहाँ टिके। वहाँ देखा उन्होंने कि उनकी सहचरी कितने अद्भुत भावसे अपने आराध्यका यह शैशव देखती देखती रह गयी हैं।

'प्रभु आरहे हैं।' पूरा सम्वादतो सबको श्रीराम माताके सदनमें ही प्राप्त होना है। सब जानते हैं आज कुमारके चचल पद उनकी क्रोड़ीमें पहुँचकर ही कुछ स्थिर होंगे।

—·|·—

७५. महामन्त्री सुमन्त्र

'कुमार शत्रुघ्नके अश्वका अनुसरण तो आज क्षीराब्धिसम्भव उच्चैःश्रवाके लिये भी सम्भव नहीं हैं।' महामन्त्रीके मुख पर आज युगोंके पश्चात् स्मित आया। उनका रथ भी नन्दिग्रामसे अयोध्याकी ओर कुमारके अश्वके साथ हीं आगे बढ़ा था और उनके रथके अश्व भी उड़े ही जारहे थे, किन्तु एकाकी अश्वका अनुसरण रथ कैसे कर सकता है ?

'आज पुनः सुमन्त्र राजरथका सूत है। एकाकी रथ ले जारहा है अयोध्या और वही रात्रिका प्रवेश काल है। आज भी नागरिकोंके प्राण इस रथकी प्रतीक्षा कररहे हैं।' महामन्त्रीके नेत्र भर आये। उन्होंने वाम हस्त अपने रजतश्मश्रु पर फेरा। पूरे चतुर्दश वर्ष, चतुर्दश कल्प भी कम थे उनके सामने और इस समय लगता है, कलकी घटना है। श्रीरामको शृङ्गवेरपुर लेगए थे महामन्त्री इसी रथमें और जब वहांसे लौटे थे.....।

'आज ये अश्व उड़ जारहे हैं।' लेकिन उस दिनकी बात आज क्यों सोची जाय। उस दिन स्वयं महामन्त्री ही क्या अपनी चेतनामें थे ? और जब वे रघुकुलके नीति-द्रष्टा महाप्राज्ञ चेतनामें नहीं थे, अश्व तो बेचारे पशु ठहरे। अपने स्वामीका स्नेह ही तो पहचानते हैं वे।

'श्री रामभद्र, अरे नहीं, मर्यादा पुरुषोत्तम' सुमन्त्रने अकारण ही गगनकी ओर दृष्टि उठायी, 'इस वृद्धका स्वभाव कहीं उनके सम्मुख भी यही रहा, पर वे इसका सम्मान करते हैं। पितृव्य कहा है इसे उन्होंने। इसका यह स्वभाव उन स्नेहशीलको प्रिय लगेगा।'

'सुमन्त्र उन्हें छोड़ आया वनमें।' महामन्त्रीके हृदयसे यह कसक अभी नहीं गयी थी ! श्रीराम वन गये, यह सन्देश लेकर अयोध्या लौट आना जैसे उन्होंने अपना महापराध माना था। पूरे चौदह वर्ष उनका मस्तक झुका रहा। किसीके सम्मुख नेत्र उठाकर देखते उन्हें देखा नहीं गया। अपने निज सेवकोंकी ओर तक उन्होंने नहीं देखा।

'सुमन्त्रको ही आज सौभाग्य मिला उनके लौटनेका संदेश सुनानेका।' महामन्त्रीने आज मस्तक उठाकर सीधे देखा है 'सुमन्त्र ही कल उन्हें नगरमें ले आयेगा।'

'वे तो पुष्पकसे आरहे हैं ?' दूसरे क्षण ही महामन्त्री चौंके, किन्तु पुनः स्थिर होगये 'पुष्पक आ सकता होगा अवश्य राज सदनमें। वह दिव्ययान है; किन्तु उसे

नगर महाँ ारमेंप्र ा कल नहीं प्राप्त होसकता। सुमन्त्र वनमें छोड़ आया था रघुकुल शिरोमणिका तो सुमन्त्र ही रथमें उन्हें नगरमें भी ले आयेगा।' आप जानते हैं कि श्रीरघुनाथ संकोचीनाथ हैं। अपने जनोंका आग्रह टालना उनके वस-बूतेका काम नहीं और उस पर भी महामन्त्री सुमन्त्रका आग्रह, श्रीरामके मनमें महामन्त्री पितृतुल्य हैं और आज्ञा देनेके अधिकारी हैं। उनका आग्रह, वह तो आज्ञासे अधिक सम्मान्य है।

'श्रीराघवेन्द्र आरहे हैं। महारानी श्रीजनकनन्दिनी एवं अनुजके साथ वे राक्षसेन्द्र विजयी कल प्रातः पुष्पकसे अयोध्या पहुंच रहे हैं।' महामन्त्रीको अधिक चिन्तनका अवकाश नहीं मिलना था। पुरजन पर्याप्त आगे तक आगये थे मार्गमें और उनमेंसे जो प्रथम मिले, उन्हें पूरे उल्लाससे महामन्त्रीने सुना दिया। साथ ही अपना शङ्ख अधरोंसे लगाया उन्होंने और विजयके मङ्गल घोषके सङ्केतके साथ उसका स्वर गूँजने लगा।

'कौन हैं राज सेवक यहाँ?' महामन्त्रीके रथके अश्वोंकी गति सीधे राजसभा-के महाद्वार पर अवरुद्ध हुई और आज पूरे चतुर्दश वर्ष पश्चात् अवधजनोंने अपने महामन्त्रीका गम्भीर, शासनके ओजसे गूँजता स्वर सुना।

'आज्ञा श्रीमान्?' एक समवेत स्वर सुनायी पड़ा 'हम सभी तो राजसेवक ही हैं।' सचमुच अयोध्यामें तो कोई ऐसा भाग्यहीन नहीं जो अपनेको आज राजसेवक समझनेमें गौरवानुभव न करे।

'महाराज श्रीकौशलेन्द्र कल प्रातः पधाररहे हैं।' महामन्त्रीका स्वर घोषणा कररहा था और आज्ञा भी दे रहा था, 'दुन्दुभी अब तक मूक क्यों है? स्वागत वाद्य ....।' आदेशके शब्द पूरे होनेसे पूर्व महाद्वारके ऊपर स्वागत वाद्य अपने सम्पूर्ण साजसे गूँजने लगे थे।

महामन्त्री रथसे कूद पड़े थे। आज उन वृद्धके शरीरमें युवकोंकी स्फूर्ति आगयी थी। उन्होंने देखा नहीं कि कब किन सेवकोंने रथको सम्हाल लिया। उन्होंने केवल आदेश दिया 'कल श्रीराघवेन्द्र इसी रथसे नगर प्रवेश करेंगे, यह समझकर रथको सज्जित करना है।' और अब महामन्त्रीकोआदेश देनेसे अवकाश कहाँ है। उनकी प्रज्ञा आज पूर्ण जागृत है और वे आदेश, अनेक विधि आदेश देनेमें व्यस्त हैं।

———

७६. महर्षि वशिष्ठ—

'दाशरथि भरत श्रीचरणोंमें प्रणिपात करता है।' आश्रम-भूमिसे बाहर ही रथ रुक गया था और महर्षिको दूरसे देखकर ही कुमार भरतलाल भूमिमें दण्डकी भाँति पड़ गये थे। प्रभुकी पादुकाएँ रथासीन थीं इस समय।

'भरत !" महर्षि अस्त-व्यस्त दौड़े और उन्होंने उठाकर हृदयसे लगा लिया भरतलालको। उनके दृगोंके परम मङ्गल बिन्दुओंसे भरतजीकी अलकें सिञ्चित हो गयीं। 'वत्स भरत ! मैं स्वयं आ रहा था नन्दिग्राम। तुम आये, तुम्हारे आजके आगमनसे यह आश्रम भी तपः पूत होगया।' महर्षि आवेगमें कह गये—किन्तु क्षण भरमें उन्होंने अपनेको स्थिर कर लिया। कुमार भरत संकोचमें पड़ें, ऐसा कोई कार्य उन्हें नहीं करना चाहिए।

'प्रभु आरहे हैं' भरतलाल इस समय दूसरे भावमें मग्न हैं। उनका गद्गद् स्वर कह रहा है—'इस अपराधी जनके अपराध उन्होंने दृष्टिमें नहीं लिये। अनुज एवं श्रीधरानन्दिनीके साथ आज वे प्रयाग महर्षि भरद्वाजके आश्रममें रात्रि-विश्राम कर रहे हैं। उन्हें लेकर पुष्पक यान कल प्रातः अयोध्या पहुंचेगा।'

महर्षि वशिष्ठका आश्रम इधर अतिथियोंके आगमनसे जनाकीर्ण होता जा रहा है। दूरस्थ काननोंके तपस्वी अतिमानव महर्षि वृन्द, जन सम्पर्कसे अतिशय अपरिचित मुनि, पता नहीं कितने सुरासुर वन्दनीय लोकोत्तर तपोमूर्ति आये हैं यहाँ और सहसा समाचार जो पहुँचा, एक पूरे समुदायने कुछ क्षणोंमें भरतलाल एवं महर्षिको घेर लिया है चारों ओरसे। वृद्ध, अतिवृद्ध, तरुण-युवा, सभी प्रकारके लोग हैं। सब प्रायः वल्कल वसन, जटाधारी, तेजोदीप्त भाल, किन्तु उनके मध्य अभी जो उन जैसा ही वल्कल वसनी जटा मुकुटी, दूर्वादल श्याम रघुकुल कुमार आगया है, सब अनुभव करते हैं वह अतिशय विनम्र अपने तेजमें, अपने तपः प्रभावमें अद्वितीय है। उसकी समता त्रिभुवनमें सम्भव नहीं। उसके प्रति सहज श्रद्धा उमड़ी पड़ती है अन्तरमें।

'हनुमानसे श्रीचरण परिचित हैं। वे पूरा द्रोणाचल उठाये अभी पिछले दिनों ही अयोध्याके आकाशपर आये थे और इस अधम भरतके प्रमाद वश..........' श्रीभरतलाल सम्वाद सुना रहे थे—'उन अमित पराक्रम परमोदारने मेरा अपराध मनमें भी नहीं माना। आज सायं वे आये थे और अभी लौट गये। उन्होंने ही यह

सम्वाद दिया। दशग्रीव श्रीराम शरानलमें दग्ध होगया और लङ्काके नवीन अधिपति विभीषण अयोध्याके अतिथि होकर प्रभुके साथ पधार रहे हैं।'

'वत्स ! इस सुसम्वादके लिए वशिष्ठ तुम्हें क्या दे सकता है ?' महर्षिने स्नेह पूर्वक देखा और अपने पदोंकी ओर झुकते भरतलालके मस्तकपर उनका दक्षिण कर पहुंच गया। वहाँ उपस्थित सामान्य अन्तेवासी तक भी जानता था. शाप और वरदानकी वाणी वैखरी वाणी नहीं हुआ करती। महर्षिके मुखसे इस समय वह गम्भीर परावाणी प्रकट हुई—'श्रीरामका स्नेह तुम्हें सदा प्राप्त रहेगा और तुम्हारा स्मरण मनुष्यको रामभक्ति दे दिया करेगा।'

'प्रभु !' कुमार भरतलाल प्रेम विह्वल पदोंमें पहुंचनेको झुके और बल पूर्वक उन्हें वक्षसे लगाये महर्षि। अकस्मात्, अनायास, संकल्प निरपेक्ष उपस्थित समस्त तपोधनोंके मुखसे भी वही परावाणी गूंजी—'एवमस्तु !'

'श्रीराम कल आरहे हैं।' दो क्षण रुककर महर्षि भरतलालको लिये आश्रम प्राङ्गणमें आगये और जब वे वेदिकापर आसीन होगये, उनके चरणोंके समीप नीचे ही भरतलाल संकोच पूर्वक बैठ गये। अन्तेवासियोंके अतिशय आग्रह पर भी उन्होंने कुशासन स्वीकार नहीं किया।

'श्रीराम कल ठीक उस समय अयोध्या पहुँचेंगे, जिस समय अयोध्यासे उन्होंने प्रस्थान किया था।' महर्षिने सबके आसन ग्रहण कर लेनेके अनन्तर कहा—'वे मर्यादा पुरुषोत्तम, उनका स्वभाव मैं समझ सकता हू। वत्स भरत ! अब इस समयका करणीय ?'

'श्रीचरण जिसे जो आदेश दें।' अत्यन्त नम्रता पूर्वक भरतलाल कह रहे थे—'सदा ही सबका वही परम कर्त्तव्य है'

'मुझे एक बार राजसदन हो आना चाहिए।' कुमार शत्रुघ्न वहाँ पहुँच गये हैं। महामन्त्री सुमन्त्रके प्रबन्धमें आज किसी प्रकारका प्रमाद संभव नहीं; किन्तु महर्षिका स्नेह आज मानता नहीं। उन्हें स्वयं एक बार सब ओर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। 'तुम राजसदन चलोगे ?'

'श्रीचरणोंका आदेश अनुलघनीय है।' परम संकोची भरतलाल अस्वीकार नहीं कर सके। महर्षिके साथ राजसदन जानेमें उन्हें क्या संकोच, वे नित्य अरण्यवासी तपोधन जब स्वयं राजसदन पधार रहे हैं, भरतलालने उसी रथसे महर्षिसे पधारनेकी प्रार्थनाकी जिससे वे अभी आये थे।

———

७७. माता कौसल्या—

'राम आरहा है ?' माताने सुना शत्रुघ्न कुमारके मुखसे और जैसे विश्वास ही न हुआ हो। दूसरे ही क्षण उनके मुखसे निकला 'भरत कहाँ है ?'

'भरत, तपस्वी भरत कहाँ है ?' लेकिन उत्तर देनेवाला तो वहाँ कोई नहीं है। शत्रुघ्नकुमारमें तो आज शैशव आगया है। वे तो दौड़ गये हैं किसी अन्यके सदनमें समाचार देने और माता कौसल्या आतुर हो उठी हैं 'भरत कहाँ है ? उसे किसीने सुनाया या नहीं है ? उसकी जटाएँ, उसका वल्कल और वह आज चौदह वर्षसे भूखा है।'

पूरे चतुर्दश वर्षसे माताको भरतकी वेदना व्याकुल किये हैं। उनके राम तो वनमें हैं। वहाँ अपार कष्ट होंगे, सुनी सुनायी बात है यह ; किन्तु समस्त वनचर रामके नित्य सेवक हैं, यह तो चित्रकूटमें माता स्वयं देख आयी हैं। वहाँके क्लेश, लेकिन आँखोंके सामने ही यह जो उनका दूसरा राम नन्दिग्राममें तपस्वी बन गया है। दूसरा राम ही तो, माताके मनने राम और भरतमें तो कभी भेद नहीं जाना।

राम कन्दमूल फलका आहार करते हैं ; किन्तु भरत तो भूखा है। पूरे चौदह वर्षसे भरतने क्या खाया है ? गोमूत्रयावक भी कोई भोजन है और उसमें भी आये दिन एकादशी, प्रदोष आदिके व्रत, चान्द्रायण, कृच्छ चान्द्रायणादि महाव्रत चलते रहते हैं ऊपरसे। अतः माताके मनको इस समय भरतकी चिन्ताने झकझोर दिया है। कहाँ है उनका भरत ? आज इस सुसम्वादको सुनाकर वे उसके मुखमें दो मीठा ग्रास दे सकें........'

'और माण्डवी, उर्मिला ? हाँ—ये बहुएँ कहाँ हैं उनकी ? भरत तो नन्दिग्राम है, किन्तु उनकी ये स्नेह सिक्ता सौकुमार्यकी साकार प्रतिमाएँ........ ?

'ये सब कम हठी कहाँ हैं।' माताका उत्साह स्वयं शिथिल होगया। वे जानती हैं—उनसे अधिक भला इस बातको और कौन जान सकता है कि आर्यनारीकी मर्यादा क्या है। भरत तपस्वी बने हैं तो माण्डवीको खिलाया जा नहीं सकता और ऐसा आग्रह अपने आपमें अनुचित है। मातासे चाहकर भी ऐसा कोई आग्रह कभी हुआ नहीं। वे सब अपने आराध्योंकी अनुगता—माताका हृदय वात्सल्य एवं गौरवसे उमड़-उमड़ पड़ता है।

'माण्डवी ! उर्मिला ! कोई है ? इन्हें बुला तो लाओ ।' शोक अकेलेमें काट दिया जा सकता है ; किन्तु आनन्द तो अपनी पूर्णता वितरणमें मानता है । आज जो माताके अन्तरमें अपार आनन्द उमड़ पड़ा है 'राम कल आरहे हैं ! अयोध्याके दुःखके दिन चले गये ।'

'मां !' माताका सर्वाङ्ग आज अतिशय शिथिल होगया है । वे अपने आसनसे उठ नहीं पाती हैं । उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा है और यह कुमार शत्रुघ्न पुनः दौड़ते आरहे हैं उनके समीप ।

'कुमार ! लाल !' अङ्कमें समेट लिया माताने और अलकोंपर उनके कर घूमने लगे ।

माता सुमित्रा आयी हैं । बहुएँ आयी हैं । राजसदनकी सेविकाएँ आयी हैं और आज, आज चौदह वर्ष पीछे माता कैकयी आयी हैं उनके सदनमें, किन्तु माताकी दृष्टि तो कुमारके मुख पर स्थिर है और आज कुमारमें जो शैशव आगया है, वे ही कहाँ किसीको बोलनेका अवकाश देरहे हैं ।

'राम रोषानलमें रावण स्वाहा होचुका । प्रभु कल प्रातः मेरे अग्रज एवं अवधकी नवीन साम्राज्ञीके साथ पुष्पक विमानसे यहाँ पहुँच रहे हैं ।' शत्रुघ्न कुमारको पूरा समाचार सुनाना है । वह सब समाचार जो सायं नन्दिग्राममें कपि श्रेष्ठ सुना गये हैं और पुनः कपिवरका परिचय भी देना है । इस समय कुमार किसीकी कुछ सुनना तो दूर, किसी ओर देखने तककी इच्छा नहीं करते । वे मातासे-माताकी गोदमें में बैठे सब सुनाये चले जा रहे हैं शिशुकी सरलता एवं शीघ्रतासे ।

माताकी दृष्टि कुमारके हर्षोत्फुल्ल मुख पर स्थिर है । स्थित हैं वहीं इस समय सदनमें आये सबकी ही दृष्टियाँ । किसीको कुछ कहना नहीं है । किसीको यह अपेक्षा नहीं है कि कोई उसे बैठनेको कहे । जो जैसे आया है, जहाँ आगया है, स्थिर है । सबके श्रवण इस समय कुमारके एक एक शब्द पी लेना चाहते हैं । सबके शरीर शिथिल है, आनन्दसे रोमाञ्चित हैं और सबके नेत्र आनन्द निर्झर बन गये हैं । कोई कुछ बोलना भी चाहे इस समय तो कण्ठ असमर्थ होरहे हैं । कुमार—केवल कुमार बोल रहे हैं शिशुकी त्वरामें ।

—✻—

७८. माता सुमित्रा–

'श्रीराम आरहे हैं ' माता सुमित्राको तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हुआ था। भरत नन्दिग्राममें तपस्वी होकर बैठे हैं और उनका निश्चय, उनका निश्चय किसीको भी अविदित कहाँ है और तब राम आवेंगे ही कल। उनको कल यहाँ अयोध्या पहुंचनेसे कोई रोक नहीं सकता।

'अभी तक कोई समाचार नहीं' दिनमें कई वार कइयोंने यह वात कही किन्तु माताने उसे सुनकर भी सुना नहीं। उन्होंने एक वार एक सेविकाको अभी दिनान्तमें झिड़क दिया 'समाचार नहीं आया तो हो क्या गया ? मेरा राम कल आवेगा। उसके आनेके साधन सहस्र हैं। वह कपि–पूरा पर्वत जो कपि हिमालयसे लंका उठाले गया कुछ घटिकाओंमें, वह रामका पायक है और वह अकेला ही पायक तो ऐसा नहीं होगा। समाचार भला कैसे आ सकता है ?'

माता आज अत्यन्त व्यस्त हैं। उनके राम अकेले तो नहीं आ रहे हैं। आ रहे हैं, यह वे असन्दिग्ध रूपसे जानती हैं। लेकिन श्रीरामके साथ वैदेही, लक्ष्मण और उनको तो लगता है कि भरत तथा यह कुमार शत्रुघ्न एवं इन सब पुत्रोंकी वधुएँ अभी अयोध्या आ रही हैं। अब तक तो अयोध्या रहकर भी ये सब यहाँ नहीं थे। सबके अन्तःपुर, सबके क्रीडोद्यान अस्त-व्यस्त पड़े हैं। अस्त-व्यस्त पड़ा है पूरा राजसदन और श्रीराम आरहे हैं।

माता पूरे सप्ताहसे व्यस्त हैं; किन्तु उनका उत्साह औरोंमें आ जो नहीं पाता है। उनके आदेश अपालित नहीं रहते; किन्तु शिथिल कर सेविकाओंका कार्य उन्हें कहाँ सन्तुष्ट कर पाता है। वे बार-बार श्रीरामके अन्तःपुरकी सज्जाको व्यवस्थित करके भी सन्तुष्ट कहां हो पाती हैं।

'श्री जानकी—अवधकी वह साम्राज्ञी होंगी वे, यह भिन्न बात; किन्तु माताकी सर्वाधिक स्नेह भाजना, हृदय पुत्तलिका और वह शैशव तपस्विनी, अब तो उसे तनिक विश्राम मिले।' माता अपनी व्यस्ततामें भी थकित हो, जाती हैं बार-बार।

'प्रभु आरहे हैं मातः !' कुमार शत्रुघ्नने पुकार कर हर्ष विह्वल हो कहा था और तत्काल दौड़ गये थे।

'शिशु है अभी शत्रुघ्न !' माता हँस पड़ी—'राम आ तो रहे ही हैं, पर यह कहाँ गया दौड़ा ?' कहीं जाय उनके कुमार, पर माता जानती हैं कि किसकी क्रोड़ी स्थिर कर सकती है। श्रीरामका समाचार पाने, संग्राम विजयका समाचार पानेकी उत्कण्ठा उनके मनमें अल्प नहीं है, किन्तु शत्रुघ्नको अब पुकारा तो नहीं जा सकता। वे श्रीराम-माताके सदनकी ओर तत्काल चल पड़ी थीं।

'मेरा पुत्र, मेरा राम कल आरहा है। अब तो सब लोग तनिक त्वरा करें।' पूरा समाचार सुननेके अनन्तर माता सुमित्रा ही सबसे पहिले बोली थीं—'राम आवेंगे तो वे अपने अन्तःपुरमें जानेसे पूर्व अनुजोंके सदनमे और सखाओंके गृहोंमें जायँगे, यह सब जानते हैं। मेरा वह किशोर तपस्वी, उसे अपने किसी स्वजनका असज्जित, अस्त व्यस्त सदन दृष्टि पड़ गया तो अपने अन्त.पुरकी सज्जा सुखी कर सकेगी उसे ?'

शत्रुघ्न !' माताका स्वर स्वस्थ था 'तुम एक बार नगरके अपने सुहृदोंके सदन देख आओ और कहीं किसी सदनमें किञ्चित भी अभाव असज्जाका चिन्ह नहीं रहेगा, यह सावधानी रखो।' माताके आदेशने कुमारको कर्तव्यका स्मरण करा दिया और उनका आनन्द विह्वल भाव गाम्भीर्यमें परिणित हो गया।

'अब किसीके करमें शिथिलता नहीं रहेगी।' माताने एक ओरसे उपस्थित सेविकाओंकी ओर देखा 'यह रजनी विश्रामके लिए बनी नहीं है। हम राजमाताके इसी सदनसे श्रीगणेश करें तो ?'

'यह तो आपके श्रमसे कबका सुसज्ज है।' माता कौशिल्याने किञ्जित बाधा दी।

'मैं आपसे अधिक राजमाता हूं और बहिन कैकेयीसे भी अधिक।' स्निग्ध स्मित आया माताके अधरों पर—'मेरा राम आरहा है। अयोध्याका वह सम्राट और मैं अभीसे सम्पूर्ण राजसदनकी सञ्चालिका हूं। मेरी व्यवस्थामें आप किसीकी कोई अस्वीकृति नहीं सुनी जा सकती।'

'अस्वीकृतिका अधिकार भी कहाँ रहा किसीका।' माता कैकेयीने इस बार कहा।

'सो तो कभी नहीं था, और अब भी नहीं है।' माता सुमित्रा उसी उत्साहमें कह रही थीं 'मैं कुछ क्षणोमें आपके सदन आ रही हूँ। आपको वहां उपस्थित मिलना चाहिए।' और वे सेविकाओंके साथ तुरन्त व्यस्त हो गयीं।

७९. माता कैकेयी—

'मेरा राम आरहा है !' आज माता कैकेयीके मुख पर उल्लास आया—'अरे कुमार !' किन्तु कुमारके चरणतो आज रुकते नहीं। उनके श्रवण आज कुछ सुन नहीं पाते। वे तो समाचार देते दौड़ रहे हैं।

'यह जहाँ जायगा, जानती हूं।' माता आज सहज भावसे उठीं 'बहिन कौशल्या का सदन मेरेलिए कब पराया था। अपनी क्षुद्रतासे कैकेयीने कुछ समझ लिया हो, वे महनीया तो इसे सदा छोटी बहिनका स्नेह देतीरहीं हैं।'

जबतक कुमार सम्वाद सुनाते रहे, माता कौशल्याके सदनमें किसीको कहाँ स्मरण था कि वह स्वयं कहाँ खड़ा है और जब कुमार जननीका आदेश पाकर सावधान हुए....।

'कैकेयी राजमाता हैं ! आपको उससे इस सम्मानका ध्यान रखकर बोलना पड़ेगा।' आज माताकी आत्म ग्लानि निर्मूल होगयी है। वे अपने सहज स्वस्थ परिहास प्रसन्न स्वरमें माता सुमित्रासे कह रही थीं 'मेरे सदनको आप सज्जित करने आ रही हैं, यह अनुग्रह तो नहीं है। मेरा पुत्र आ रहा है। अयोध्याका सम्राट मेरा पुत्र, राजमाताका सदन आपको सज्जित कर ही देना चाहिए।'

'जीजी बधायी !' सहसा मुड़ीं वे माता कौशल्याकी ओर, 'मेरा राम आरहा है। तुमने मेरे तीन पुत्र बल पूर्वक अपने बना लिए, किन्तु राम मेरा है। राजमाता बननेका बड़ा भारी लोभ है कैकेयीको और इसके लिए वह कितना अनर्थ कर सकती है, तुम जानती हो। राम मेरा रहेगा। राजमाताका स्वत्व मैं छोड़ नहीं सकती।'

'राम कब तुम्हारे नहीं थे बहिन ?' माता कौशल्याने उठ कर हृदयसे लगा लिया कैकेयीको 'तुम तो शैशवसे उनकी माता हो और अवधकी राजमाता तुम नहीं हो, यह कहनेवाला रामके राज्यमें स्थान पानेकी तो आशा कर नहीं सकता।'

'तुम दोनों अपना स्वत्व हार चुकी हो' उन्मुक्त हास्य सुन पड़ा माता सुमित्राका 'मैं दुगुनी राजमाता हूं और मेरा आदेश....'

'सो हम सबके सिर पर' माता कैकेयीके नेत्र उठे—'आपके ओज एवं त्यागकी समताका साहस कैकेयीमें नहीं है। कैकेयी राजमाता भी है तो आपके अनुग्रहसे जिसे मैंने हार दिया, आपका अनुग्रह ही उसे सुरक्षित ले आरहा है। चारों कुमार आपके, किन्तु राम आप इस....'

'आज तुम जो माँगोगी वह सब मिलेगा।' हँस गयीं माता सुमित्रा 'राम तुम्हारे रहे। और कुछ?'

माता कैकेयीने चरण पकड़ लिए होते यदि उठाकर शीघ्रता पूर्वक माता सुमित्राने उन्हें अपने हृदयसे न लगा लिया होता।

'तुम्हें वरदान देनेमें कोई भय नहीं है, यदि अपनी कूबरी दासीसे तुम पहिले ही कोई मन्त्रणा न कर आयी हो।' सहसा संकुचित होगयीं माता। यह प्रसङ्ग आज नहीं ही उठना चाहिए।

'वह दीना भी आज आप सबकी अनुग्रह भाजना है।' माता कैकेयीके मनमें जो उल्लास आगया है इस समय, वह इतना अतल गम्भीर है कि उसमें कोई स्मृति कोई कटु व्यङ्ग भी करे तो वह भी क्षोभ उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं। आज उन्हें जैसे कुछ स्पर्श नहीं करता। ऊपर—बहुत ऊपर उठ गयीं हैं वे उस धरातलसे जहाँ क्षोभ पहुँच सकता था।

'कहाँ है वह?' माता सुमित्राने देखा इधर उधर 'उसे सदन सज्जामें मेरा साथ देना चाहिए।'

'वह उन्मादिनी हो गयी है।' हँसी माता कैकेयी—'मेरे सदनमें आप उसे पा लेंगी, किन्तु आज उसकी सेवा तथा सम्मति पर भरोसा नहीं किया जा सकता।'

'मन्त्रणा देनेसे तो उसे अवकाश मिल ही गया है।' माता सुमित्रने हँसकर कहा—'लेकिन अब उसे सेवामें प्रमाद करने नहीं दिया जा सकता।'

'बहिन, तुम बैठोगी नहीं।' माता कौशल्याने स्वयं आसन देनेका उपक्रम किया, 'आज तो……'

'इस सदनमें भी मुझे आप आसन देंगी और कुछ लेनेका आग्रह करेंगी? यह सदन मेरा अपना नहीं है जीजी?' कैकेयीने दोनों भुजाओंमें भर लिया माँ को—'किन्तु बहिन सुमित्राका आदेश है कि उनके पहुँचनेसेपूर्वमैं अपने सदनमें पहुंच जाऊँ और उनकी यह सेना अभियान करने ही वाली है।' सचमुच सेविकाओंका समूह पूरी त्वरासे भवन सज्जामें लगा था।

—卐—

८०. मन्थरा—

'प्रभु आ रहे हैं ।' कुमारने तो इतना ही कहा था । वे तो तत्काल सदनसे दौड़ते चले गए थे । माता कैकेयीका पुकारना भी उनके श्रवणोंमें नहीं पड़ा था ।

'प्रभु आरहे हैं । प्रभु आरहे हैं ।' मन्थरा पुकारती जा रही थी । वह कुब्जा उन्मादिनी हो उठी थी आज और सदनमें इधरसे उधर भागती, लुढ़कती पुकारती जारही थी 'प्रभु आ रहे हैं ।'

किसे सुना रही थी मन्थरा यह सम्वाद ? उसे आज यह पता नहीं है । सदनके प्रत्येक कोनेको, प्रत्येक भित्तिको, प्रत्येक पदार्थको, आज जैसे सब चेतन हैं उसके लिए और फिर दौड़ गयी वह सदनके उद्यानमें । वहाँ प्रत्येक वीरुधको, लताको, पुष्पको, पक्षी और भृङ्गको···· । कितनी देर तक वह सुनाती पुकारती, दौड़ती रही, उसे पता नहीं; किन्तु बहुत देर नहीं । सहसा स्मरण आया, जिसे सर्व प्रथम यह सम्वाद देना उसका कर्तव्य था, उसे तो सुनाया ही नहीं । भागी वह सदनकी ओर ।

'महारानी !' पूरे उच्च स्वरसे पुकारा उसने । आज पूरे चौदह वर्ष पीछे यह सम्बोधन उसके कण्ठसे फूटा । इन दिनों केवल 'स्वामिनी' कहनेकी उसे अनुमति थी, किन्तु आज···· ।

लेकिन मन्थरा स्वयं अपने सम्बोधनसे चौंक पड़ी । 'महारानी ?' उसकी स्वामिनी अबतो महारानी नहीं हैं । कितनी अनुचित बात कही है उसने । उसका दग्धमुख क्या कभी कुछ उचित बात नहीं कह सकेगा ? महारानी, अयोध्याकी महारानी तो कल आरही हैं ।'

'राज मा····' फिर स्वर रुक गया मन्थराका । उसकी स्वामिनी, उन्हें राज-माता बनानेका स्वप्न देखकरजो अनर्थ किया उसने, आज कोई उसकी छाया भी सहन नहीं कर सकेगा । आज अनर्थ हो जायगा यदि उसने फिर यह सम्बोधन करनेकी इच्छा की । तब ?

'राजमाता ! राजमाता ठीक तो कह रही थी तू ।' सुप्रसन्न स्वर तब तक सदनमें आती माता कैकेयीका उसके श्रवणोंमें पड़ा 'अभागी, पूरे उत्साहसे राजमाता क्यों नहीं कहती ? कैकेयी सचमुच राजमाता है अब । तूने उसे एक दुःस्वप्न दिखाया था और वह राजमाता हो नहीं सकी थीं । कल राम आ रहे हैं, अयोध्याके सम्राट राम और वे कैकेयीके पुत्र हैं । राजमाता है कैकेयी ! तू संकोच क्यों करती है ?'

'राजमाता !' डरते डरते बड़े संकोच पूर्वक स्वर निकाला मन्थराके कण्ठसे ।

'हाँ राजमाता' कैकेयीजीने एक स्नेह भरी धौल दी मन्थराके कूवर पर— 'उत्साहसे क्यों नहीं वोलती ? अबसे तू मुझे दूसरा कोई सम्बोधन करेगी तो शत्रुघ्न तेरा कूवर तोड़ देगा ।'

'राज-ाता !' जैसे हृदयसे फूटा सम्बोधन, किन्तु उसके उल्लासमें मन्थरा भूलगयी कि वह क्या कहना चाहती है । उसके नेत्र झरने लगे ।

'सुन ! मेरा पुत्र, मेरा राम कल आरहा है । मेरा अयोध्या नरेश राम ।' गद्‌गद् स्वर माता बोल रहो थीं 'बहिन सुमित्रा सेविकाओंकी पूरी सेनाके साथ यहाँ अभी पहुँचने ही वाली हैं । यह सदन, इसका उद्यान राजमाताको शोभा दे सके, मेरे रामको उसे देख प्रसन्नता हो, इस प्रकार रात्रिमें ही सज्जित हो जाना है ।'

'मैं, राजमाता मैं' मन्थरा कुछ कह नहीं पा रही थी । कुछ सोच नहीं पा रही थी ।

'तू बकरीकी भाँति 'में में' नहीं करती रहेगी ।' माता आज खुलकर हँसी 'भवनकी सज्जामें सहायता कर और अपने इस कूवरको पहिले सजा ले । तेरा पुरस्कार तुझ अभी मिला जाता है और कल रामका नीराजन मैं कर लूँ तो तू जो माँगेगी....'

लेकिन मन्थराको पूरी बात सुननेका अवकाश नहीं था । उसे आज पुरस्कार, उपहारकी चिन्ता नहीं थी । सचमुच वह अपना श्रृंगार करने दौड़ गयी थी ।

'मन्थराका श्रृंगार, उसका वस्त्र और रत्नाभरणोंका प्रदर्शनाधार बना उसका कुब्ज देह, माता सुमित्रा इस सदनमें आयीं तो उस दासीको देखकर हँसते हँसते विह्वल हो गयीं । उन्होंने माता कैकेयीसे कहा 'अपने नवीन नरेशको पहिले इस कुब्जाके विवाहकी व्यवस्था करनी होगी ।'



'मेरा ही एक नाम हिरण्यगर्भ है ।' भगवान सूर्यने स्वयं बतलाया --'मेरे इस मंडलका ही एक पृष्ठ ब्रह्मलोक है। तुम मेरे समीप वहाँ पहुँच चुके हो । सृष्टिमें जीवनकी सृष्टि मेरी रश्मियोंकी उष्णता ही करती है और मैं यहाँ इस रूपमें अपनी ऊष्मासे पोषण करता हूँ। प्राणियोंके नेत्रोंका अधिदेवता होकर उन्हें प्रकाश देता हूँ '

'इतना तेज, इतना उग्र प्रकाश ?' बालकको सन्देह हुआ ।

'तुम ठीक सोचते हो ।' सूर्य भगवानने कहा—'प्रलयङ्कर भी मैं ही हूँ। रुद्रलोक मेरा दूसरा पृष्ठ है। रुद्र भी मेरा ही रूप है। मैं उन शिवकी एक मूर्ति हूँ; किन्तु वह रूप पूर्ण सक्रिय प्रलयके समय होता है। सृष्टिके सञ्चालन-पालनके लिए ऊर्जाका उद्गम हूँ मैं और अर्जा उग्रतेजका ही दूसरा नाम है।'

'तुम्हारे सुकुमार शरीर और नवनीत मृदुल स्वभावके अनुरूप यह लोक नहीं है।' भगवान् सूर्यने स्वत: इसे लक्षित किया था, अत: कहा—'तुमको क्षीराब्धि प्रिय लगेगा। वहाँ तुम सिन्धु-सुताका स्नेह प्राप्त कर सकोगे।'

'अम्बा यहाँ भी नहीं हैं ?' बालकने पूछना चाहा था; किन्तु उसे अवकाश नहीं मिला। उसे अन्यत्र भेजनेसे पूर्व केवल वात्सल्यसिक्त भगवान् सूर्यने कहा था--'धरापर तुम मेरे कुलमें आओगे तब मैं ही तुम्हें तुम्हारे सखाके समीप पहुँचानेको प्रेरणा-माध्यम बनूँगा। निखिल बुद्धिवृत्तिका मैं प्रेरक हूँ, यह शक्ति सार्थक हो जायगी तुम्हें प्रेरित करके।'

'आहा !' बालक उल्लसित हो उठा अनन्त अपार दुग्धसिन्धु देखकर। उत्ताल तरंगायमान क्षीरोदधिके अन्तरालसे स्निग्ध ज्योति जैसे प्रकट हो रही थी।

वहाँ अपार विस्तीर्ण सौध था; किन्तु उसे दुग्ध तरंगोंने ही निर्मित किया था। उसमें तरंगें ही भूमि, स्तम्भ, छत आदि सब थीं और उस सौधमें सज्जा थी। कहना कठिन था कि ज्योतिर्मय मुक्ता-लड़ियाँ लटक रही थीं या नवनीतके उज्ज्वल बिन्दु सजे थे।

कमलतन्तु श्वेत सहस्र फण उठाये भगवान् शेष स्थिर थे। उनके मस्तककी मणियोंके प्रकाशसे दुग्धराशि अत्यधिक उज्ज्वल हो रही थी।

उस दुग्ध सौधमें, उन उज्ज्वल शेषकी सुदीर्घ कुण्डलीभूत देहपर

एक घनश्याम, पीताम्बरधारी, रत्नमुकुटी, चतुभु ज मन्द-मन्द मुस्कराते चरण फैलाये आधे लेटे थे।

'अम्ब !' उन परमपुरुषके प्रफुल्ल पद्म पादारविन्दोंको अङ्कमें लिये जो सौन्दर्य, सौष्ठव, सौकुमार्यकी अधिदेवता सिन्धुसुता विराजमान थीं, उन्हें देखते ही बालकने पुकारा और भुजाएँ फैलाकर दौड़ा उनकी ओर।

'वत्स !' उन श्रीने भी परमपुरुषके चरण अङ्कसे नीचे रखे और ऐसे दौड़ीं दोनों कर फैलाये जैसे केवल आतुर जननी दौड़ सकती है।

'तुमने मुझ अजातपुत्राको पुत्रवती बनाया।' उसे अङ्कमें लेकर सिन्धुतनयाकी वाणी गद्गद हो उठी। उनका वक्षावरण भीगने लगा वात्सल्यकी धारासे। उन्होंने ही उसका मस्तक शेषशायीके श्रीचरणोंसे स्पर्श कराया।

'बाबा ! तुम यहाँ दूधमें सोते हो ?' बालकको यहाँ तनिक भी संकोच नहीं लगा। उसे लगता था कि उसका नटखट कन्हाई ही यहाँ इतना बड़ा बनकर लेट गया है। उन अनन्तशायीका श्रीअंग अनेक स्थानोंपर दुग्ध एवं नवनीत विन्दु पड़नेसे चन्दन-चर्चित लग रहा था। बालक सहज भावसे शेषकी कुंडलीपर आगे बढ़ गया और उदर देशपर पड़ा नवनीतकी बूंदको अपने नन्हें करसे फैलाता बोला।

'यह किञ्चित् रजोमिश्रित सत्वधाम है।' अनन्तशायी समझाने लगे स्नेहपूर्वक—'सृष्टिके सब शिशुओंको उत्पन्न होनेके साथ दूध चाहिये। उनकी माताओंके स्तनोंमें दूध उनका स्नेह बनता है। यह सागर उस वात्सल्य स्नेहको समष्टि और शिशु बड़े होते हैं, तब उन्हें शोभा, सम्पत्ति, सुयश देकर पालन करनेवाली तुम्हारी ये अम्बा।'

'करते सब ये आदिपुरुष हैं।' भगवती श्रीने कहा—इनका अनुकम्पापूर्ण दृष्टिपात पाये बिना मैं कुछ कर नहीं पाती। वैसे ये सहज निष्क्रिय ही दीखते हैं।'

पुरुष तो भोक्ता हो रहता है। लेकिन उसका भोक्तापन भी भ्रम है। वह केवल द्रष्टा है। उसकी प्रसन्नताके लिए परमेश्वरी प्रकृतिका सम्पूर्ण सम्भार है।

'अनन्त ब्रह्माण्डोंके पालनमें तुमको श्रम नहीं होता ?' बालकने श्रीकी ओर देखा।

'ये परमपुरुष और मैं भी केवल इस ब्रह्माण्डके पालक-पदपर हैं।' रमाने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम परम पालकके समीप भी पहुँच सकते हो। हम तो उनके अंश हैं।'

बालकको कुछ विशेष अनुभव नहीं हुआ। वह क्षीराब्धिशायीके समीपसे गर्भोदशायी महाविष्णुके समीप पहुँच गया है, यह भी उसने अनुभव नहीं किया। उसने ध्यान ही नहीं दिया कि अब तक जिनके समीप है वे अष्टभुज हैं।

अवश्य ही वहाँ सूर्यमण्डलसे भी अनेक गुणित अधिक प्रकाश है; किन्तु वैसा उग्र नहीं। बहुत सौम्य, शीतल भी नहीं श्वेतद्वीपके समान और उग्र भी नहीं।

'अम्ब !' बालकने उन भूमापुरुषके चरणोंके समीप आसीना सिन्धुतनयाकी ओर देखा—'तुम इन परमपुरुषके समीप ही बैठी रहती हो ?'

'मैंने कभी तुम्हारी उपेक्षा की है ?' भगवती श्रीने स्नेहपूर्वक देखा—'मैं तो इनसे पराङ्मुखोंकी भी उपेक्षा नहीं करती। लेकिन मेरी प्रीतिका प्रसाद पीड़ा तो नहीं होना चाहिये।'

'अम्ब, तुम किसीको पीड़ा दे कैसे सकती हो।' बालकको अपनी दयामयी अम्बापर विश्वास है—'तुम तो केवल स्नेहमयी हो।'

'क्या करूँ, बालक मचलते हैं तो मुझसे देखा नहीं जाता। मैं दौड़ जाती हूँ उन तक। इसीसे इन्होंने मेरा नाम चञ्चला रख दिया है।' परम-पुरुषकी ओर तनिक कटाक्षपूर्वक देखा उन सिन्धुतनयाने—'लेकिन वे अज्ञ मेरे प्रसादका दुरुपयोग करते हैं। ऐन्द्रियक भोगमें लगकर रोग, अशान्ति, अधःपतनको आमन्त्रण देते और भवमें भटकते हैं।'

'इसीसे मैं इनका प्रसाद सम्पत्ति अपने प्रिय जनों तक कम ही पहुँचने देता हूँ। तुम तो जानते हो कि इनका वाहन उलूक है।' इस बार परम पुरुष सहास्य बोले—इनकी कुछ खटपट है भगवती वीणाधारिणीसे। अतः ये जाती हैं तो अहंकार दे आती हैं और वे दिव्या दूर चली जाती हैं।'

'अम्ब ! आप दौड़ दौड़कर इतना शान्त होती हैं।' बालकमें अपनी अम्बासे सहानुभूति जागी—'आप यहीं अच्छी हैं।'

'मैं कहाँ देवी सरस्वतीसे द्वेष करती हूँ। मैं तो उनके आश्रितोंकी भी पालिका हूँ।' भगवती श्रीने परमपुरुषके कटाक्षका प्रतिवाद किया—

'मेरी सचमुच प्रीति वे पाते हैं जो इन पुरुषोत्तमके चरणाश्रित हैं। मैं स्वयं इनके श्रीचरणोंको छोड़कर कहीं नहीं जाती। इन्होंने मेरे लिए एक लोक ही बना दिया है।'

'अम्ब ! वह तुम्हारा आनन्द लोक है ?' बालकने पूछा।

'तुम्हारे लिए अगम्य नहीं है।' भगवती श्रीका यह कहना पर्याप्त था। बालक भूमापुरुषके समीपसे रमा-बैकुण्ठ पहुँच गया।

सौभाग्यकी बात कि रमा-बैकुण्ठमें दिनका समय था। रात्रि होत तो भगवती रमाके साथ केवल गन्धर्व कन्याएँ दीखतीं। इस समय वे गन्धर्वोंके साथ परमपुरुषकी अर्चामें लगी थीं।

'अम्ब ! यहाँ क्या करती हो तुम ?' बालक बिना संकोच समीप पहुँच गया।

'बड़ी तीव्र इच्छा थी अपने इन आराध्यकी अर्चा करनेकी। इन्होंने मेरे लिए यह लोक ही बना दिया। मैं यहाँ अहर्निशि इनकी अर्चा करनेको स्वतन्त्र हो गयी। यहाँ और कोई कार्य मेरे पास नहीं।' भगवती लक्ष्मीने कहा—'किन्तु मुझे अर्चासे न तृप्ति होती है न सन्तोष। तुम अच्छे आ गये। तुम तो मायातीत लोकके हो, तुम कुछ बतलाओगे ?'

'अम्ब, यह लोक तो आपका उपासना मन्दिर है।' बालकको लगा कि मन्दिरमें अधिक देर रहना अच्छा नहीं। अर्चकोंको वहाँ रहना चाहिये। 'हम सबोंको भी कन्हाईको सजानेमें कभी सन्तोष नहीं होता।'

भक्तिमें-प्रीतिमें, सेवामें सन्तुष्टि तो तब हो जब इनकी सीमा होती हो। लेकिन यहाँ अम्बा अर्चामें लगी रहती हैं तो बालकको यहाँसे विदा होना चाहिये या मौन बैठना चाहिये।



सौम्य शेष—

अनन्त भगवान, इन्हींको शेष कहते हैं। अवश्य ये संकर्षणके, दाऊदादाके अंश हैं; किन्तु यही तो आकर्षणकी सत्ता हैं, अतः ये संकर्षण हैं।

कमलतन्तु श्वेत, वैसे ही चमकते और पारदर्शी न होनेपर भी पारदर्शी-जैसे लगते सहस्र फण शेष। अनन्त आकर्षणकी जो सत्ता हैं, धरा उनके ही एक सिरपर, एक धारापर तो धरी है। शेषको साकार पानेका प्रयत्न मानव करे तो उसकी मूर्खता होगी। समुद्रके अधिदेवता वरुणको या अपने गृह-देवताको ही देख पाता है वह ? भगवान शेष आकर्षण शक्तिके अधिदेवता हैं, यह सीधी बात भी मनुष्य समझता नहीं।

सुभद्र तो पार्शिव शरीरी सामान्य शिशु नहीं था। वह पाताल पहुँचा इच्छा करते ही। भावदेह हो तो भावलोक पहुँचता है।

जिनके एक सिरपर सरसोंके दानेके समान धरा धरी हैं, उनके सिरका विस्तार आप सोच लें। वैसे सहस्र फण और उन फणोंमें ज्योतिर्मय मणियाँ, प्रत्येक सिरमें मणियोंके समान ही जलती दो-दो आँखें और लप-लपाती मुखसे निकली दो दो जिह्वाएँ। लेकिन अत्यन्त शान्त, स्थिर भगवान् शेष। उनके शरीरमें कम्पका नाम नहीं।

नाग कुमारियाँ उन अनन्तके उज्ज्वल सुचिक्कन शरीरमें अंगराग लगानेमें तन्मय थीं। कुछ ऋषि समीप स्तुति कर रहे थे। स्वयं भगवान् शेष गायन कर रहे थे। हरिगुण गान ही उनका परमप्रिय व्यसन है।

'दादा !' सुभद्र प्रसन्न हो गया। उसे कुछ ऐसा लगा कि यह नाग देह तो आवरण है। इसमें स्पष्ट गौरवर्ण, नीलवसन, एक कर्णमें कुण्डल पहिने, कन्धेपर अष्ट धातुका हल धरे उसके अपने दाऊ दादा बैठे हैं। वह पुकारकर भी दौड़ नहीं सका। उसने देखा कि जैसे दादाके अङ्कमें उसका कन्हाई ही लेटा है।

कन्हाई तो चतुर्भुज नहीं है। यह तो भूमापुरुष जैसे कोई हैं; किन्तु अष्टभुज नहीं हैं। ये पीताम्बर पहने, अधलेटे भले कन्हाई जैसे हैं; किन्तु चतुर्भुज हैं।

'तुम समीप नहीं आओगे ?' भगवान् शेषने स्नेहपूर्वक पुकार लिया— 'इतनी दूर क्यों रुक गये ? देख ही रहे हो कि मैं हिल नहीं सकता।'

'दादा ! तुम यहाँ क्या करते हो ?' वह समीप पहुँचकर उन नीलवसन संकर्षणका हाथ पकड़कर बोला—'ऐसे बिना हिले ऊबते नहीं ?'

सहस्रफण शेषका संगीत चलता रहा। नाग कुमारियोंकी ओर उसने देखा नहीं और स्तुति करनेवाले ऋषि-मुनियोंकी ओर तो उसकी पीठ हो गयी थी। केवल संकर्षणके अङ्कमें लेटे सुकुमार नीलसुन्दरको वह बार-बार देख लेता था।

'तुम विष्णुलोक ही तो देखने निकले हो।' उन नीलसुन्दरने इस बार कहा—'मुझे पहिचान लो और अपने इन दादाको भी। पालकको धारण-पोषण दोनों करना पड़ता है। क्षीराब्धिमें मैं पोषणकर्ता हूँ और यहाँ हम दोनों धारक है। धारकको निष्कम्प तो रहना ही पड़ता है। मैं दादाके अङ्कमें स्थिर न रहूँ तो ये उग्र हो उठते हैं। उनकी फूत्कारें ज्वालामुखी बनकर फूटने लगती हैं। इनके रोषसे रुद्र प्रकट हो जाते हैं और त्रिशूल उठाये प्रलय करने दौड़ पड़ते हैं।'

'तुम चतुर्भुज हो गये; किन्तु तुम्हारा नटखटपन गया नहीं।' सुभद्र हँसने लगा—'दादा कितने तो सौम्य हैं और तुम इनको दोष दे रहे हो।'

'भद्र ! ये समीप रहते हैं तब मैं इनको देखनेमें अपने-आपको भूला रहता हूँ !' संकर्षणने ही कहा—'इनको देखनेसे तृप्ति ही नहीं होती। वैसे सर्पकी क्या सौम्यता। उग्र एवं क्रूर तो स्वभाव है मेरा।'

'दादा, तुम भी बहकाने लगे ?' सुभद्रने उपालम्भ दिया—'तुम कब क्रोध करते हो ?'

'भले मेरा स्वभाव क्रोधी हो' शेषने स्वीकार किया—'तुम जैसे सखा सम्मुख हों तो मुझे कभी क्रोध नहीं आवेगा।'

'ये ज्ञानघन ही तुम्हारे गुरु हैं।' सुकुमार उन चतुर्भुज श्यामसुन्दरने कहा—'समस्त जीवोंके यही गुरु हैं और गुरु दयामय होनेके साथ शास्ता भी होते हैं।'

'लेकिन तुम्हारे साथ मेरा यह सम्बन्ध नहीं है।' संकर्षणने प्रतिवाद किया—'हम सखाओंमें कोई गुरु-शिष्य या बहुत बड़ा-छोटा नहीं हुआ करता। केवल किञ्चित् बड़े-छोटेका अन्तर। मैं तुम्हारा बड़ा भाई।'

'हाँ, तू तो दादा है।' सुभद्र तुम कहना भी भूल गया; 'किन्तु दादा ! तू मुझे सिखलावेगा नहीं ? मैं किसी दूसरेको गुरु बनाने भटकूँगा ?'

'तुम्हें भटकना कहाँ है ?' भगवान संकर्षण बोले—'तुम स्वेच्छासे भवमें जा रहे हो। वहाँ भी समय आनेपर मैं तुम्हें सम्हाल लूँगा।'

'अब तो तुम निश्चिन्त हो गये ?' नीलसुन्दरने इस बार कहा।

'लेकिन मैं अभी हूँ कहाँ ?' सुभद्रने अब इधर-उधर देखा। नीलवसन संकर्षण जैसे शेषका आवरण ओढ़े हों। वे सहस्रफण शेष—भले वे सौम्य हैं, शान्त हैं, किन्तु इतने विशाल सजीव सर्पके समीप खड़े रहना अटपटा लगा भद्रको। उसने छूकर देखा शेषके उस श्वेत शरीरको और सोचा—'इतना शीतल होता है सर्प और ऐसा गिलगिला, इसीलिए सम्भवतः इन पीतवसनको यह शय्या प्रिय है।'

'तुम पातालमें हो।' भगवान शेषने ही कहा—'पृथ्वीका अन्तराल सप्तावरणात्मक है। यह अन्तिम आवरण। इसे भू-केन्द्र कह सकते हो। इसीसे मैं इसके आकर्षणका अधिष्ठाता बना, इसका धारक हूँ।'

'पातालमें भूमिके मध्य अन्तरालमें !' सुभद्र कुछ सोचते हुए स्वयं बोल गया—'मूषकके समान बिल बनाते मुझे बाहर जाना पड़ेगा ?'

'तुम किसी विवर-द्वारसे तो यहाँ आये नहीं।' शेषने ही समझाया—'भगवती रमा या श्रीनारायणने भी तुम्हें नहीं भेजा। तुम वहाँ अब भी जा सकते हो। तुम्हारे इस दिव्य देहको देश या काल तो बाधक बनता नहीं। लेकिन तुम यहाँ आ गये हो तो भू-विवरोंको भी देखते जाओ। भगवान वामन तुम्हें देखकर प्रसन्न होंगे। मय और बलिसे मिलकर तुम्हें प्रसन्नता होगी। जहाँ तुम्हें अच्छा न लगे, तुम्हें कोई नहीं रोकेगा।'

'इन भू-विवरोंमें ही नागलोक है। अमृतकुण्ड है वहाँ !' अनन्तशायीने सस्मित कहा।

'मुझे नागोंका जूठा अमृत नहीं चाहिये।' सुभद्रने मुख बनाया—'अमृतका वास्तविक कलश अमरावतीमें है, जानता हूँ।'

'भगवान वामन ही वहाँ उपेन्द्र हैं।' शेषने कहा—'तुम अमृत पीना चाहोगे तो तुम्हारे लिए वह अलभ्य नहीं रहेगा। लेकिन....।'

'अमृत पीकर मुझे यहीं कहीं अटके नहीं रहना।' सुभद्रने स्पष्ट कह दिया—'सुरोंका वह उच्छिष्ट न भी हो, तब भी तो शरीरमें अटकाता ही है। मेरा कन्हाई मेरी प्रतीक्षा करेगा।'

'तुम्हारा निर्णय सुदृढ़ रहे। शेषने सुप्रसन्न आशीर्वाद दे दिया। ●

दानवेन्द्र मय—

'अमृतकी आवश्यकता आपको नहीं है, हम यह जानते हैं।' सुभद्र भगवान शेषके समीपसे पाताल पहुँचा तो उसे ऐसा लगा कि यहाँ उसके स्वागतकी तैयारी हुई है। नागराज वासुकि अनेक नाग-प्रमुखोंके साथ सामने ही मिले—'हम तो उपकृत होंगे यदि आप हमारा यह उपहार स्वीकार करेंगे।'

अनेक सिरोंवाले नागोंसे भरा वह पाताल लोक। इतने विशाल उनके वे मोटे लम्बे देह कि उनमें एक भी पृथ्वीपर आ जाय तो पूरे महानगरको मुख खोलते ही निगल जाय। लेकिन सुभद्र अभी सहस्र शीर्ष शेषके समीपसे आया है। उनके सम्मुख तो ये वासुकि भी अत्यन्त साधारण सर्प-से लगते हैं।

'आप देखते ही हैं कि मैं अभी अनन्तशायीके समीपसे आ रहा हूँ।' सुभद्र बालक सही; किन्तु विनम्र है—'मैंने सुना है कि समुद्र-मन्थनमें आप मन्दराचलमें लिपटे मन्थनरज्जु बने थे। सबसे अधिक कष्ट आपने सहा। अमृत आपका उचित भाग था। सुरोंने आपको अमृत देकर कोई उपकार नहीं किया।'

'आप मुझे क्षमा करें।' दो क्षण रुककर वह फिर बोला—'आपका अनुग्रह ही मेरे लिए बहुत है। अमृत पीकर मर्त्यधरापर जाना विडम्बना होगी।'

'आपका शील है कि आपने नहीं कहा कि यहाँका अमृत हमारा उच्छिष्ट है। हमारे हाथ तो हैं नहीं कि हम उसे पृथक् पीते। सीधे मुख डालकर चाट लेना हमारा स्वभाव है।' वासुकिने स्वीकार किया—'हमारे विष-मिश्रणसे यह मादक बन गया है।'

सच यह है कि सुभद्रको अनुभव ही नहीं कि मादक क्या होता है। कोई जानबूझकर अपनी बुद्धिको खोना चाहेगा—भले कुछ क्षणोंके लिए ही हो, यह वह सोच ही नहीं सकता।

'आप सब यहाँ भूमिके अन्तरालमें रहते हैं।' नागोंकी मणियों और उनके ऐश्वर्यमें उसे कोई आकर्षण नहीं। उसे वासुकिपर दया आ रही है—

'अमृत-मन्थनमें मन्दरके घर्षणके घाव भले अमृतपानसे मिट गये; किन्तु उनके चिह्न अब भी आपके शरीरपर हैं।'

'ये तो मेरे सौभाग्य-सूचक हैं।' अब वासुकिने अपनी पूंछ घुमाकर दिखायी—'मेरे सिर और इस पूंछको अपने हाथोंमें स्वयं श्रीहरि पकड़े रहे अधिकांश मन्थनके समय। सुरों और असुरोंने तो केवल हाथ लगाया। ये सब अल्पप्राण सिद्ध हुए। वे भूमापुरुष मन्थन न करते तो सुधा निकलनी थी। मैं अमृत न भी पाता, उन सर्वेश्वरके कर-स्पर्शसे ही स्वस्थ हो गया था।'

'आप अब अनुमति दें। सुभद्रने अपने नन्हें करोंसे वासुकिका शरीर सहला दिया।

पृथ्वीके भीतर ये महानाग—ये प्राणके, बलके अधिदेवता न हों तो धरामें धारक शक्ति कहांसे आवे?

रसातलमें हिरण्यपुर मिला; किन्तु उस स्वर्णपुरीके निवासी निवात-कवच दानवोंने सुभद्रकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। निश्छिद्र कवच चढ़ाये वे अपनी भोगपुरीमें मदोन्मत्त घूमते दीखे। बालक सुभद्रको उनमें कोई रुचि नहीं थी।

महातलमें भी वह रुका नहीं। उसके पहुँचते ही वहांके नागोंने सिर उठाकर, फण फैलाकर फूत्कार छोड़ी।

'आप महातलके हमारे सजातीयोंपर क्रोध मत करना!' पातालसे चलते समय वासुकिने प्रार्थना की थी—'उनके पूरे समुदायका नाम ही क्रोधवश है। पृथ्वीपर अपार विष उत्पन्न होता रहता है। वह अहर्निशि भूतलकी महाग्निमें परिपक्व होकर कुछ ही ऊपर जा पाता है और वहां विष-धातु तथा विषैली वनस्पतियोंमें उपलब्ध होता है। शेष महातल सीधे दानवेन्द्र भेज देते हैं। सृष्टिकर्ताने उसे नागोंका आहार बनाया है; किन्तु उसके सेवनसे वे क्रोधोन्मत्तप्राय रहते हैं।'

सुभद्रको शेषके सम्मुख तो इस लोकके अनेकसिर नाग केंचुए जैसे लगे। ये सब पातालके वासुकि तथा उनके बन्धुओंसे पर्याप्त छोटे थे। बालकको कौन बतलाता कि तक्षक जैसे अत्यन्त विषैले इनमें प्रायः सब हैं और तक्षक ही इनका नायक है। ये आकारमें भले वासुकि प्रभृतिसे छोटे हों, इनका विष अत्यन्त दारुण है।

कोई कह देता कि कालिय नाग भी इन्हींमें है तो सुभद्र अवश्य उस शतैकशीर्षाको ढूँढ़ता । कन्हाई उसके फणोंपर थिरकता फिरा था । कन्हाईका यह सखा नागोंसे डरना क्या जाने; किन्तु इनमें उसे रुचि नहीं थी । इन्हें उद्विग्न करनेके लिए क्यों रुके वह यहाँ ?

तलातलमें उसे दानवेन्द्र मय मिल गये । वह चकित रह गया । उस जैसे नन्हें बालकको ये दानव विश्वकर्मा इस प्रकार भूमिमें पड़कर क्यों प्रणिपात करते हैं ?

'बाबा ! उठो तुम ।' सुभद्र अपने छोटे करोंसे उन वज्र कर्कश काय, सुदीर्घ शरीरको उठा तो सकता नहीं था । उसने उनके घुंघराले केशोंसे मण्डित मस्तकको छू दिया ।

कज्जल कृष्ण वर्ण भी इतना भव्य, इतना सुन्दर होता है, कोई सोच नहीं सकता । विशाल लोचनमय धीरेसे उठे । बालकके पदोंका मस्तकसे स्पर्श किया उन्होंने और हाथ जोड़कर सम्मुख खड़े हो गये । उनके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे । शरीर कम्पित था । रोम-रोम उठा हुआ । वाणी बोलनेमें असमर्थ हो रही थी ।

'आप यह क्या कर रहे हैं ?' सुभद्रने उन महाशिल्पीके अञ्जलि बाँधे दोनों कर पकड़ लिये ।

'यह महामायावी दानव आज पवित्र हो गया ।' मयने किसी प्रकार कहा—'मयका जीवन श्रीकृष्णका दान है । यह खाण्डवके दावानलसे बच भी जाता तो पार्थके वाण अवश्य विद्ध कर देते यदि तुम्हारे मयूरमुकुटोने इसकी शरणकी आर्त पुकार सुन न ली होती ।'

'इसमें क्या हो गया ! कन्हाईने कौन-सा बड़ा काम कर दिया । यह तो उसे करना ही चाहिये था ।' सुभद्रको मय बहुत शालीन लग रहे थे—'आप अब तक यह नन्हीं बात भूले नहीं ।'

'मैं दानव हूँ । उपकार स्मरण रखना दानवका स्वभाव नहीं होता; किन्तु वे घनश्याम तो अपनाकर छोड़ना नहीं जानते । उन्होंने अपनाया, तभी तो अपने प्रियजनके दर्शनका सौभाग्य दिया ।' मय भावक्षुब्ध थे—'आप तो मेरे आराध्य पिनाकपाणिके भी प्रिय हैं । अपने चरणोंके अर्चनका सौभाग्य दें इस दानवको ।'

चाहे जितना संकोच हो, सुभद्र समझ गया कि दानवेन्द्रका आग्रह

स्वीकार करना ही पड़ेगा। लेकिन उनके सदनमें जाकर वह चौंका। सदन ऐसा नहीं था जैसा दानव विश्वकर्माका होनेकी कोई कल्पना करे। कठोर-सुस्थिर कलाका भी कहीं नाम नहीं और वैभवका चाकचिक्य भी नहीं।

'आप यहाँ तपस्या करते हैं?' जब मय विधिपूर्वक उसका पूजन कर चुके, तब उसने पूछा। इसलिए पूछा; क्योंकि मयने श्रुतिके सस्वर पाठ सहित उसकी अर्चा की थी। इसलिए पूछा, क्योंकि वह दानवेन्द्रके सदनकी अपेक्षा कोई मन्दिर अधिक लगता था। इसलिए पूछा, क्योंकि वहाँ उसे श्रद्धा, सात्विकता साकार लगती थी।

वहाँ कला थी, सजावट थी, मणि-रत्न भी थे; किन्तु सब होनेपर भी बहुत सादगी लगती थी। बहुत सौम्य सज्जा थी। लगता था कि एक-एक अणु यहाँ अत्यन्त श्रद्धासे सजाया गया है।

'दानव तप भी करे तो सृष्टिके लिए दुर्दैव ही लावेगा।' मय खुलकर हँसे—'किन्तु भगवान भूतनाथने अपने इस आश्रितको अपनाया तो इसकी भोगेच्छा मर गयी। मैंने पुत्रोंके मोहमें पड़कर त्रिपुर-निर्माणका पाप किया— विनाशके साधन दे दिये दानवोंको और मेरे करुणामय आराध्यने इतनेपर भी मुझे वीरभद्रको भेजकर बचा दिया।* मैं उनका हाटकेश्वर ज्योतिर्लिंग लेकर चला आया यहाँ। यह मेरी अर्चनाका स्थान है। यह उन महेश्वरने मुझे दिया है। इसे मैं भोग भूमि बनानेका प्रमाद तो नहीं कर सकता।'

'यदि आप अधिकारी समझें मुझे' संकोचपूर्वक सुभद्रने कहा - 'भगवान् हाटकेश्वरके दर्शन करलूँ मैं।'

आराध्य विग्रह अर्चकका अपना होता है। उस रूपमें आराध्य उसके सर्वथा अपने हैं। वहाँ दूसरे किसीका—आराध्यके अभिन्न परिकरोंका भी प्रवेश अर्चककी अनुमतिके बिना अनुचित है।'

'आप अर्चन नहीं करेंगे?' मयने भी संकोचपूर्वक ही पूछा—'दानवकी आराध्यमूर्ति होनेपर भी ज्योतिर्लिंग है वह।'

'यहाँ विल्वपत्र और पुष्प....' सुभद्रने पूछा। उपयुक्त उत्तम सामग्री न प्राप्त हो तो पूजनमें उसकी रुचि नहीं होती।

---

* त्रिपुर-दहन चरित 'शिव चरित' में गया है।

'आप भूल ही गये कि यह दानव मायावी है और' मय खुलकर पहिली बार हँसे—'विश्वकर्माका संस्पर्धी भी है यह। आप नीलोत्पलोंसे अर्चा करेंगे या रत्नकमलोंसे ?

'रत्न तो कठोर और निर्गन्ध होते हैं।' सुभद्रको स्वर्ण, रत्न, मणि कभी भव्य या मूल्यवान नहीं लगे। 'सुगन्धित, सुरंग, सुकुमार सुमन ही अर्चाके उपयुक्त उपकरण होते हैं; किन्तु बाबाको विल्वपत्र, धतूरा और आकके फूल प्रिय हैं।'

'आप पधारें !' मयने मार्ग-दर्शन किया।

'आप मन्त्रपाठ कर दीजिये।' सुभद्रने भूमिमें मस्तक रखकर भगवान हाटकेश्वरको प्रणाम किया और समीप सजे आसनपर बैठ गया—'पूजाकी विधि भी आप ही बताइये। यहाँके आप प्रधान अर्चक हैं।'

'आप दानवके यजमान बन रहे हैं।' मयने विनोद किया—'दक्षिणा यह नहीं छोड़ेगा।'

'कन्हाई दे देगा।' सुभद्रके समीप अपना क्या धरा है और जब कन्हाईको देगा है वह क्यों सोचे कि दानव विश्वकर्मा क्या माँगेंगे।

'नमः शंकराय च मयस्कराय च।
नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥'

मयकी गम्भीर परावाणी गूँजने लगी। वे महाशैव श्रद्धाविभोर पूजन करानेमें तन्मय हो गये। सम्भवतः पहिली बार वे किसीके आचार्य बने थे।

गंगाजल, दुग्ध आदिका सविधि अभिषेक और जब समयका प्रश्न नहीं, सामग्रीका अभाव नहीं तो पूजन पञ्चोपचार या षोडशोपचार क्यों हो ? महाराजोपचारसे पूजन चलने लगा।

मय और सुभद्र दोनोंमें-से किसीको पता नहीं लगा कि कब अर्चा-विग्रहके स्थानपर साक्षात् धूर्जटि गङ्गाधर आकर आसीन हो गये और पूजन ग्रहण करने लगे।

नीराजनके अनन्तर स्तवन करते मय नृत्य करने लगे ओर सुभद्रने ताली बजाना प्रारम्भ कर दिया, यह भी दोनोंको स्मरण नहीं कि उनके स्तवन, नृत्यमें कब डमरूका डिम-डिम सम्मिलित हो गया।

'वरं ब्रूहि !' दोनों जब अन्तमें प्रणिपात करने लगे, तब एक साथ दोनोंके मस्तकोंपर कर स्पर्श हुआ और अमृतस्वर गूंजा।

'श्रीचरणोंमें अनुराग।' झटपट दोनों बैठे और अञ्जलि बाँधकर एक साथ बोले।

'एवमस्तु !' वह ज्योतिमूर्ति उस अर्चा-विग्रहमें ही अदृश्य हो गयी।

'आचार्य ! आपकी दक्षिणा ?' कुछ समय लगा सुभद्रको स्वस्थ होनेमें। सावधान होनेपर उसने हँसते-हँसते मयकी ओर देखा।

'आप महा महेश्वरके स्नेह शिशु हैं।' मयने सुभद्रके पदोंपर मस्तक रख दिया—'महेश्वरने आपकी ओरसे जो दक्षिणा दे दी, अनन्तकालके लिए यह दानव उससे परितृप्त हो गया।'

'अब आप अनुमति दें।' सुभद्रने चलनेका उपक्रम किया।

'एक अनुरोध है।' मयने अञ्जलि बाँधी—'आप सुतलमें भगवान वामनके दर्शन तो करेंगे ही और मेरे आराध्यने यहीं आपकी अर्चा स्वीकार करली है। अतः वितल आप छोड़ दीजिये।'

'कोई विशेष बाधा है ?' सुभद्रने सहज पूछ लिया।

'आपके लिए कहीं कोई बाधा सम्भव नहीं; किन्तु' मय संकोचपूर्वक कह गये —'भगवान हाटकेश्वरका अर्चा-विग्रह यहाँ है और वितल उनका अन्तःपुर है। देवीके साथ वे वहाँ एकान्त क्रीड़ा करते हैं। मैं भी वहाँ कभी नहीं जाता।'

'अम्बा संकोचमें पड़ें, मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा।' सुभद्रने अपनी यात्रामें-से वितल जानेका कार्यक्रम छोड़ दिया। यह अच्छा ही हुआ। पृथ्वी गर्भकी अग्निसे अतल-वितल दोनों तप्त रहते हैं। उमा-महेश्वर तो अग्निमूर्ति वितलमें निवास करते हैं। साथमें भूत-प्रेत जैसे अगिया बेताल, सुभद्र वहाँ जाकर प्रसन्न नहीं होता।



दैत्यराज बलि–

अत्यन्त प्रसन्न हुआ सुभद्र सुतल पहुँचकर। यह तो वह स्वर्ग पहुँचा तब पता लगा कि अमरपुरीका ऐश्वर्य सुतलके सम्मुख बहुत फीका है; किन्तु ऐश्वर्य और सौन्दर्य सुभद्रको प्रभावित नहीं करता। वह अभी ब्रह्मलोक तथा विष्णुलोकोंका वैभव देखकर आया है। उसे प्रसन्नता हुई सुतलके स्वामीके द्वारपर गदापाणि भगवान वामनको देखकर।

'तुम यहाँ खड़े हो? तुम्हें पता है कि मैं आ रहा हूँ? तुम अकेले कैसे आ गये? यह गदा कहाँसे ले आये!' सुभद्र दौड़कर वामनके पास पहुँच गया। उनका हाथ पकड़कर हिला दिया उसने। उसे यही लगा कि उसका कन्हाई ही वहाँ आखड़ा हुआ है।

वही नवघन सुन्दर शरीर, वैसा ही पीतपट; किन्तु सुभद्रको अपनी भूल शीघ्र ज्ञात हो गयी। वह वामनका हाथ छोड़कर दो पद पीछे हटकर उन्हें देखने लगा– तुम तो कन्हाई नहीं हो। इतना मोटा जनेऊ पहिने हो और मुझसे इतना छोटा कन्हाई नहीं है। मैं सुभद्र हूँ—भद्रसेन। तुम कौन हो?'

'मैं तुमको जानता हूँ।' मन्द-मन्द मुस्कराते मेघ गम्भीर स्वरमें भगवान वामन बोले—'मैं देवमाता अदितिका सबसे छोटा पुत्र हूँ; किन्तु बालक नहीं हूँ। मेरा शरीर वामन है।'

'वामन—वामन विष्णु! बाबा, मुझे क्षमा करो! मैं तो समझा ⋯!' सुभद्रने हाथ जोड़े।

'भूलसे सही; किन्तु भ्रमसे भी अपना सखा समझकर तुमने मुझे सम्मानित ही किया है।' वामन सुप्रसन्न थे—'तुमसे अपराध नहीं हुआ। लेकिन तुम यहाँ आगये हो तो दैत्येश्वरकी अर्चा स्वीकार कर लो!'

'महाभागवत प्रह्लादका पौत्र विरोचनात्मज दैत्यबलि प्रणिपात करता है।' एक ओरसे यह विनम्र स्वर आया तो सुभद्रने उधर देखा। स्वर्ण गौर बिशाल वपु, रत्नाभरण जो पुरुष भूमिमें दोनों हाथ आगे

फैलाकर पड़ गये थे, उनका शरीर अत्यन्त सुगठित था; किन्तु देखनेमें वे देवोपम लगते थे। उनके पीछे जो अनुचर आये थे, वे भले दैत्य कहे जायँ; किन्तु वे दैत्य दीखते नहीं थे।

'आप उठो !'सुभद्रने उनका मस्तक स्पर्श करके कहा—'मैं तो बालक हूँ। मेरी यह अभ्यर्थना …'

'आप अपने इस चरणाश्रितको ठगो मत।' सर्वत्र भगवद्दर्शनके अभ्यासी बन चुके बलिने कहा –'एक बार यज्ञशालामें बालक बनकर पधारकर आपने मुझे वञ्चित करनेका प्रयत्न तो कर देखा। आप अपनी करुणासे स्वयं वञ्चित हुए।'

सुभद्रने वामनकी ओर देखा। बलि क्या कह रहे हैं, यह पूरी बात वह भले न समझ सका हो; किन्तु समझ गया कि इन वामनकी बात ही वे कह रहे हैं।

'तुम दैत्येश्वरके साथ पधारो। इन्हें अर्चाका सौभाग्य प्राप्त होने दो।' भगवान वामनने कहा—'मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। संकोच मत करो।'

'मेरा जन्म-जन्मका पुण्योदय हुआ आज' बलि भूल गये कि वे दैत्येश्वर हैं और दैत्यसेवकोंसे घिरे द्वारपर खड़े हैं। वे तो दोनों हाथ उठा कर कीर्तन करने लगे। वामनने अपने अनुभावसे ही उन्हें शान्त किया।

भगवान वामन दैत्यराजके आग्रहपर भी कभी भीतर नहीं जाते। बलिको उनकी पूजा द्वारपर आकर करनी पड़ती है। आज बालक रूपमें ऐसे अतिथि पधारे कि उनके साथ वामन प्रभु भी सिंहासनपर बैठेंगे और उनके पाद-प्रक्षालनका अवसर पुनः प्राप्त होगा।

बलिने वामन और सुभद्रको एक ही रत्नसिंहासन पर बैठाया। दैत्येश्वर पट्ट-महिषी विन्ध्यावलीने दोनोंके चरण धोये। सविधि अर्चा हुई। अवश्य इस अर्चामें वामनके संकेतपर सुभद्र अग्रपूज्य बना लिया गया था। पुराण-पुरुष होनेपर भी शरीरसे वामन बालक ही लगते थे, अतः उनकी समीपताने सुभद्रको बहुत कुछ निःसंकोच कर दिया था।

'तुम इस समय जहाँ हो, यह सुतल धराका अन्तराल है; किन्तु धराके तलमें जो असह्य अग्नि-सागर है, जिसमें सब धातुएँ द्रव बनीं खोल

रही हैं, उससे यह इतना अन्तरंग है कि वहाँकी ऊष्मा यहाँ सुखद जीवन-दायिनी बनी रहती है।' वामनने स्वयं बतलाया।

'यह स्थूल लोक तो लगता नहीं। सुभद्रने देखा कि वहाँ समीप अत्यन्त मनोहारी उद्यान लहरा रहे हैं और सुस्वर पक्षियोंके स्वर भी हैं।

'हम असुर दैत्य, दानव, राक्षस और यक्ष—इन चार कुलोंके हैं। हम देवताओंके समान ही महर्षि कश्यपकी सन्तान हैं।' बलिने अपना कुल-परिचय दिया—'देवता हमारे अनुज हैं। हम सबकी माताएं पृथक हैं। हमारी और देवताओंकी देह-रचना तथा जन्मजात शक्तियोंमें कोई अधिक तारतम्य नहीं है। देवता अधिक सत्वगुण अपनाकर सुकुमार हो गये और दैत्य-दानवादिने कर्मशील रहकर कायाको कठोर बना लिया।'

'देवताओंके समान ही दैत्य-दानव, यक्ष-राक्षस भी कामरूप, जन्म-सिद्ध होते हैं।' भगवान वामनने कहा—'स्वर्ग भोग-लोक है और ये सुतल आदि कोई हीन लोक हैं, ऐसा नहीं है। ये भी पुण्यलोक ही हैं; किन्तु देवलोकसे ये प्रकृष्ट हैं।'

'देवलोक उत्तम नहीं है?' सुभद्रने पूछा।

'देवताओंका दर्प है कि अमरावती उत्तम है। अन्यथा हम असुरोंने अनेक बार उसे बलपूर्वक अधिकृत किया है। देवता भागे-भागे फिरते रहे हैं।' बलिने सगर्व कहा—'हमारे इन लोकोंमें एकपर भी कभी देवताओंका अधिकार नहीं रहा।'

'स्वर्गकी अधिक निकटता है मनुष्य-लोकसे। तुम चाहो तो इसे उसकी श्रेष्ठता कह सकते हो; किन्तु यह निकटता उसे उपेक्षणीय भी बनाती है।' भगवान वामन गम्भीर हो गये।

'मनुष्यके पाप या पुण्य जब इतने अधिक हों कि किसी पार्थिव देहमें उनका भोग सम्भव न हो तो उसे पृथ्वीपर जन्म देनेसे पूर्व उसके पाप या पुण्योंको एक सीमा तक कम करना आवश्यक हो जाता है। पाप भोगके लिए नरक हैं और पुण्य भोगके लिए स्वर्ग। पाप एक सीमामें आये तो नरकसे छुटकारा और पुण्य भोग द्वारा परिमित हुए तो स्वर्गसे निष्कासन।'

'इन अधोलोकोंमें धराका प्राणी नहीं आता?' सुभद्र का प्रश्न स्वाभाविक था।

'त्रिभुवनमें जितने लोक हैं, सब भोग लोक हैं। केवल धराका मनुष्य ही वहाँ जाता है। धरापर भी मनुष्य योनि ही कर्मयोनि है और उसमें भी धन्य हैं वे जो अजनाभवर्ष (भारत) में मनुष्य जन्म पाते हैं।' बलिने इस बार उल्लासपूर्वक कहा—'देवता और हम दैत्य भी भारतमें रहनेको उत्सुक रहते हैं। अवसर मिलते ही वहाँ टिकने लगते हैं या जन्म लेने लगते हैं।'

'तब ये अधोलोक भी अमरावतीके ही समान हुए।' सुभद्रने कहा नहीं, केवल सोचा।

'अधोलोकोंमें वे पुण्यात्मा जन्म लेते हैं जिनके पुण्य इतने अधिक हों कि कल्प पर्यन्त उन्हें जन्म न लेना हो।' भगवान वामनने कहा—'केवल कुछ विशेष महानुभाव मन्वन्तर पर्यन्त यहाँ रहते हैं।'

'मैं ऐसा ही भाग्यहीन हूँ।' बलिने खेदपूर्वक कहा —'धरापर पहुँच गया था और मेरे ये मोक्षदाता प्रभु प्रसन्न भी हुए; किन्तु स्वर्गके मोहने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। इन परमोदारने मेरे सौ अश्वमेध यज्ञके फलके रूपमें सावर्णि मन्वन्तरका इन्द्रत्व मेरे लिए सुरक्षित कर दिया।'

'स्वर्ग तब सचमुच उपेक्षणीय है। वहाँसे निष्कासनकी अवधि ही अनिश्चित है।' सुभद्र बोल उठा—'ये अधोलोक कम-से-कम एक कल्पका आश्वासन तो हैं।'

'कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें तथा तपोलोक, जनलोक और महर्लोकमें भी पुण्यात्मा रहते हैं।' वामन भगवानने स्पष्ट किया —'जो शुद्ध सत्वगुणी होते हैं. वे उन लोकोंमें और जो कर्मासक्त रजोगुणी धर्मात्मा, किन्तु उग्र प्रकृति होते हैं, वे इन अधोलोकोंमें पहुंचते हैं।

'मैंने केवल ब्रह्मलोक देखा है।' सुभद्रको लगा कि भगवान वामन जैसा उत्तम और समवयस्क न सही, लगभग समकाय मिला है तो पूरी जानकारी उसे प्राप्त कर लेना चाहिये।

'तुम उन लोकोंको देख लो। उनको देखनेके पश्चात् अमरावती पहुँचोगे तो वहाँके भोग तुम्हें प्रलुब्ध नहीं करेंगे।' वामनने सम्मति दी—'तपोलोक, जनलोक और महर्लोक ये तीनों तपस्वियोंके ही हैं। इनमें तुम्हें कल्पजीवी तापस, ज्ञानी, योगी मिलेंगे। तुम उनसे मिलकर प्रसन्न होगे।'

'मैं जटा नहीं बढ़ाऊँगा और न तप करूँगा।' सुभद्रका बालकपन मचला–'मुझे उनमें किसीको गुरु नहीं बनाना। मैं तो मर्त्यधरापर निवास करूँगा।'

'जिसे स्वयं संकर्षण भगवानने मन्त्र देनेका वचन दिया है, उसे शिष्य बननेका धृष्ट प्रयत्न कोई नहीं करेगा।' वामनने आश्वासन दिया—'तुम्हें तप या ध्यान करनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु हरिचर्चा तुम्हें प्रिय लगेगी। वहाँ भगवत्कथागत प्राण पवित्रात्मा कम नहीं हैं।'

'तब मैं वहाँ जाऊँगा।' सुभद्र उठ खड़ा हुआ। उसके उठते ही भगवान् वामन और सपरिकर बलि भी उठकर खड़े हो गये।

'तुम अधोलोकोंको तो देख ही रहे हो।' भगवान वामनने अन्तिम सूचना दी—'इनमें-से वितल भगवान हाटकेश्वरकी विहार-स्थली है और अतल मयपुत्र महामायावी बलकी। ऊपरके लोकोंको देखते लौटो तो अमरावती भी देख ही लेना; किन्तु दूसरे लोकपालोंकी पुरियाँ स्वर्गसे कम सुशोभन नहीं हैं। लोकपालोंकी समस्या तुम यदि सुन लोगे तो तुम्हारे सखाका ध्यान भी कदाचित चला जाय उनकी ओर।

'लोकपालोंकी पुरियाँ ?' सुभद्रने पूछा।

'कुबेर, वरुण, यम तीनोंकी पुरी देख लेना पर्याप्त होगा।' वामन भगवानने कहा—'वैसे तो अग्नि, वायु, निऋतिकी भी पुरियाँ हैं और गंधर्व, अप्सराओंके उपनगर हैं अमरावतीमें।'



महर्जनः तपः—

असंह्य उष्णता धराके उस अन्तरालमें। पिघले लावेका उबलता समुद्र; किन्तु दिव्य देह सुभद्रको उसका क्या भय।

सब अधोलोक भी देवलोकोंके समान भावलोक ही हैं। सुभद्र तो सूर्यलोक भी हो आया था। वितल उसने छोड़ दिया था और अतल उसे अटपटा लगा। उस अग्नि-समुद्रमें उसे अल्प आकर्षण भी नहीं दीखा।

सुभद्र वहाँ रुक भी जाता तो क्या मिलना था उसे? मयके महा-मायावी पुत्र बलके समीप ९६ मायाएँ सही, लेकिन सुभद्रकी तो माया सीखनेमें कोई रुचि नहीं। उसे माया ही सीखना होता तो मय मना करते?

अतलकी अकल्पनीय ऊष्मा। उस अग्निमें मयपुत्र बल और उसके अनुचरोंका आवास है। उनका आहार है हाटकरस अर्थात् पिघला स्वर्ण। इस आहारपर रहनेवाले कैसे होंगे—धराका प्राणी कल्पना भी नहीं कर सकता।

वहाँ स्त्रियाँ भी हैं; किन्तु उनके केवल तीन वर्ग हैं—१. कामिनी—सदा कामुका। २. स्वैरिणी—उनका अपना मन जिस पुरुषको जब स्वीकार करे, उस पुरुषको प्राप्त करके रहेंगी। ३. पुंश्चली—कोई पुरुष उन्हें चाहे जब प्राप्त कर सकता है। इनके अतिरिक्त उस लोकमें कोई गृहिणी या पत्नी नहीं। वहाँ माता, बहिन, बेटीकी कल्पना ही नहीं।

दानवेन्द्र मयके मायावी पुत्र बलने यह द्रव अग्निका लोक अपना निवास बहुत सोचकर बनाया। देवता दानवोंके शत्रु और सर्वत्र उनका भय; किन्तु इस अग्नि समुद्रमें आकर वे करेंगे क्या?

दानव बलकी कोई महत्त्वाकांक्षी नहीं। उसे विलास—निरुपद्रव विलास चाहिये। उसने यह अग्निसमुद्र बसा लिया। उसे अपने समान रुचिके सेवक चाहिये। उसने अपनी जम्हाईसे शतशः स्त्रियाँ उत्पन्न कर दीं। इन स्त्रियोंके उपरोक्त तीन वर्ग। कहींसे कोई अपहरण नहीं, अतः स्त्रीके कारण संघर्षका प्रश्न नहीं।

अब जो दैत्य-दानव एक बार इस लोकमें आ जाता है, भूल ही जाता है कि सृष्टिमें दूसरा भी कहीं कोई स्थान है। यहाँका द्रव सुवर्ण पीकर और

यहाँकी स्त्रियोंके सम्पर्कमें आकर उनका जादू न चले, सम्भव नहीं। ऊपरसे बलकी मायाओंका महा जाल। यहाँ पहुँचा प्रत्येक पुरुष समझने लगता है—'मैं सर्वसमर्थ हूँ। मुझसे अधिक भोग सक्षम दूसरा कोई नहीं। मुझमें दस सहस्र हाथियोंका बल है।*

आप कह सकते हैं कि 'यह पागलपन है। लेकिन पागल-मदोन्मत्त हुए बिना कोई प्राणी—दानव सही, उस अग्निसमुद्रमें रहना ही क्यों चाहता? दानव बलने कामिनी आदि स्त्रियोंके तीन वर्ग तथा अपनी मायाका विस्तार ही इसलिए किया था कि वहाँ आये दैत्य-दानव उसके व्यामोहमें वहाँसे जाना न चाहें। उसका लोक बसा रहे। वह वहाँ पत्नी बननेकी निष्ठा रखनेवाली दानव नारियाँ लाकर सन्तान-परम्परा चलानेके पक्षमें नहीं था।

'सन्तान होती है तो परिवार बनते हैं। उनके स्वार्थ पृथक होते हैं। इससे संघर्ष उत्पन्न होता है।' आप बलके मतसे असहमत हो सकते हैं—किन्तु उसे एकमात्र अपने प्रति सबको वहाँ निष्ठावान रखना था। अतः उसकी व्यवस्था निरंकुश शासकके अनुरूप ही है।

सुभद्रने जनलोकमें एक महापुरुषसे पूछा था—'सृष्टिकर्त्ताने एक अधः लोक ही क्यों ऐसा बना दिया? बल और उसके अनुचर कल्पजीवी हैं।'

'पृथ्वीपर जीवन बना रहे, इसके लिए आवश्यक है कि भूगर्भमें पर्याप्त ऊष्मा हो।' महात्माने समझाया—'उस ऊष्मामें बल और उसका समाज बना रहता है तो कहीं किसी अन्य लोकका कुछ नहीं बिगड़ता। विश्व-स्रष्टाको तो सब भावोंके बीज भी सुरक्षित रखने पड़ते हैं। जब इस जनलोकमें वासनाका बीज ही नहीं तो कहीं उसीका प्राधान्य भी होना चाहिये।'

सुभद्र सीधे तपोलोक चला गया था। अतलमें वह कुछ क्षणको पहुँचा और वहाँसे इतना खिन्न हुआ कि बीचके लोकोंको लौटते हुए देखना उसे ठीक लगा।

तपोलोक भी सुभद्रको बहुत प्रिय नहीं लगा। उसमें न आवास हैं, न उद्यान। केवल विशाल वृक्ष हैं और प्रचुर जल है। पशु-पक्षियोंका वहाँ प्रवेश ही नहीं। पूरा लोक नीरवप्राय। कदाचित् ही कहीं गति होती है।

* आज जैसे अश्वशक्ति (हार्स पावर) बलके मापका माध्यम है, प्राचीन भारतीय परम्परा शक्तिका माप गज बल मानती थी।

ध्यान, समाधि, तप—सब शान्त, मौन और अपनी साधनामें संतुष्ट। किसीका ध्यान किसी दूसरेकी ओर नहीं जाता।

सत्त्वगुणमें भी गति नहीं है। तपोलोक परिशुद्ध सत्त्वका मनोभाव। धरापर हम आज असंख्य ऐसे व्यक्ति देखते हैं जो अपने दैनिक जीवनमें परम सन्तुष्ट हैं; किन्तु यह सन्तोष रजोगुणका होनेसे अस्थिर है। तपोलोकका सन्तोष निरतिशय है।

साधनमें जो सुख, शान्ति, सन्तोष है यह केवल साधक समझ सकते हैं। निर्बाध, निर्विघ्न साधन चलता रहे, साधकके लिए इससे बड़ा सौभाग्य नहीं। उसे दूसरा कुछ नहीं चाहिये।

तपोलोक ऐसे सब साधकोंका लोक नहीं है। वह उनका लोक है जो तपोनिष्ठ रहे धरापर। व्रत, उपवासमें निष्ठा यहाँ पहुँचाती है।

कोई ऊर्ध्वबाहु एक पाद खड़ा है, कोई पञ्चाग्निमें स्थित है। किसीने आहार ही नहीं, जल भी त्याग दिया है। अनेक जलमें डूबे रहते हैं। कुछ ऐसे जो वृक्षोंसे उतरते ही नहीं। वहाँ कितने समयका प्रश्न व्यर्थ है। कल्पान्तमें भी तपोलोक, जनलोक और महर्लोकका नाश नहीं होता। ये लोक तो महाप्रलयमें तब लीन होते हैं, जब भगवान ब्रह्मा अपनी दो परार्धकी आयु पूरी करके परमपद प्राप्त करते हैं।

सुभद्रकी तपस्या और ध्यानमें रुचि नहीं। वह तपोलोकसे शीघ्र जनलोक आगया और जनलोक आया तो बहुत समय तक भूला रहा कि उसे और भी कहीं जाना है।

जनलोक तपोलोकसे सर्वथा भिन्न। ढूँढ़नेपर भी कोई वहाँ ध्यानस्थ न मिले। कहीं कथा हो रही है और कहीं संकीर्तन महोत्सव है। कोई एकाकी ही अपने संगीतमें स्वयं निमग्न है।

निर्गुण या सगुणका आग्रह जनलोकमें नहीं। लेकिन कथा हो या संकीर्तन, गायन हो या वार्ता, केवल भगवानको वाणी और मन समर्पित। उन सर्वात्माके सगुण रूपकी चर्चा या निर्गुण तत्त्वका निरूपण।

सुभद्र विभोर हो गया। कन्हाईका गुणगान, व्रजेन्द्रनन्दनके नाम-गुण-लीलाका कीर्तन--वह स्वयं ताली बजाता कहीं नाच उठता और कहीं शान्त सुनता।

निर्गुण चर्चा भी सुलभ थी और भगवानके सभी रूपोंके रसिक थे; किन्तु सुभद्रने कम ही उधर ध्यान दिया। वैसे वह भगवान नारायण, श्रीगङ्गाधर, महाशक्ति, श्रीरघुनाथ, भगवान गणपति, सूर्य नारायणके सुयश-सत्संगसे अरुचि नहीं रखता था। गया वहाँ भी; किन्तु घूम-फिरकर श्रीकृष्ण-कथा स्थल उसका केन्द्र बन गया।

'भद्र ! महर्लोकके सिद्ध तुम्हारा सामीप्य चाहते हैं।' अचानक सनकादि कुमारोंमें-से सनन्दनजीने सूचित किया—'वैसे तुमको अपने मध्य पाकर हमें बहुत हर्ष होता है।'

सुभद्र बालक था। स्वभावतः नित्य पाँच-छः वर्षके बने रहनेवाले इन कुमारोंमें उसका आकर्षण था। वह इन्हें अग्रजोंका सम्मान देता था। ये परमर्षिगण भी उसे स्नेह दे रहे थे। जब ये कुमार साथ चलने लगे तो वह महर्लोक आ गया।

कुमार सम्भवतः उसे पहुँचाने ही आये थे। जनलोकका तो वह था नहीं कि द्विपरार्ध पर्यन्त वहाँ बना रहता। महर्लोकके सिद्धोंका सत्कार स्वीकार करके चारों कुमार ब्रह्मलोक चले गये सुभद्रको छोड़कर।

'आप सब यहाँ रहेंगे ?' सुभद्रको महर्लोकमें पहुँचकर मर्त्यधराका ध्यान आया। उसे लगा कि जब यहाँसे धरापर उतरा जा सकता है तो ये सब सिद्ध अजनाभवर्षमें जन्म क्यों नहीं ले लेते।

'तुम्हारे समान स्वतन्त्र किसी लोकमें कोई नहीं।' एक वृद्धने बतलाया—'हम सब विश्वनियन्ताके विधान-परतन्त्र हैं। हमारी आयु द्विपरार्ध पर्यन्त है; किन्तु प्रत्येक प्रलयमें हमें यह अपना लोक त्यागकर जन-लोकमें प्रलयकाल व्यतीत करना पड़ता है।'

'क्यों ?' सुभद्रने पूछ लिया।

'प्रलयमें जब नीचेके लोग भस्म होने लगते हैं, यहाँ इतनी उष्णता हो जाती है कि यह लोक निवास योग्य नहीं रहता।' उन वृद्धने सखेद कहा—'प्रलय तो पहुँची ही रहती है। ब्रह्माजीके दिनका अन्त हुआ और प्रलय आयी। उन स्रष्टाकी प्रत्येक सायं-सन्ध्याको हम भागनेको विवश हैं। रात्रि—प्रलय रात्रि जनलोकमें हमें व्यतीत करनी पड़ती है।'

'हमारे आकार प्रायः वही हैं जो पृथ्वीपर मनुष्य देह त्यागते समय था।' सब वृद्धप्राय, उज्ज्वल केश अधिक, मुण्डित मस्तक या जटाधारी

देखकर सुभद्रने पूछा था कि 'यहाँ कोई बालक क्यों नहीं है ? युवा इतने कम क्यों हैं ?'

'हम मानव जीवनमें मायाके प्रपञ्चसे प्रलुब्ध हो गये ।' सखेद एकने सुनाया—'तत्त्वज्ञान प्राप्त था हमें । अनेक समाधि सिद्ध थे हममें । अनेकने उपासनासे आराध्यका प्रत्यक्ष पाया था; किन्तु किसी प्रयोजन विशेषसे जान-बूझकर सिद्धिका उपयोग किया और यहाँ आना पड़ा ।

'कब तक आप सब यहाँ रहेंगे ?' सुभद्रको यह विवशता बुरी लगी ।

'अब तो द्विपरार्धके अन्तमें ब्रह्माजीके साथ हमें छुटकारा मिलेगा ।' उस सिद्धने कहा—'धराके साधकोंके संरक्षण, सहायता, मार्गदर्शनका दायित्व हमें तब तक निभाना है । सिद्धिने हमें धराके साधकोंकी सहानुभूतिके बन्धनमें बाँध दिया ।'

'सहानुभूति, सहायता तो बुरी बात नहीं है ।' सुभद्रने चकित होकर कहा ।

'सहानुभूति-सहायताका अहंकार बुरी बात है ।' वे सिद्ध कह गये—'सिद्धिका प्रयोग ही इस अहंकारसे होता है कि हम भी कुछ कर सकते हैं । अन्यथा सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ करुणावरुणालय सर्वेशके सम्मुख अपनी शक्तिके प्रयोगका प्रयत्न अपराध तो है ही ।'

सुभद्रको यह बात बहुत अटपटी लगी । लेकिन वह कह गया—'इतना मैं जानता हूँ कि कन्हाई खेलमें कोई अटपटा खिलौना बनाने लगे तो उस समय उसे रुचता नहीं कि कोई उसकी भूल सुधारे । वह रूठने लगता है । अतः मैं उसके ऐसे पचड़ेमें नहीं पड़ता । उसे कुछ ज.नना या कराना हो तो स्वयं कहना चाहिये ।'

यह सिद्धलोक जिसे महर्लोक कहते हैं, सुभद्रको रोक नहीं सकता था । वहाँ कोई बालक तो था ही नहीं । अमरावती और धरा दीखती थी वहाँसे । अतः सुभद्रको यात्रा करनी थी ।



अमरावती अभागिनी—

'आपने कौनसे पुण्य किये हैं ?' पहुँचते ही द्वारपालने यह प्रश्न किया तो सुभद्र झुंझला उठा।

'मुझे पता नहीं।' उसने रूखे स्वरमें कहा—'यह पता रखना मेरा काम नहीं है।'

जीवका काम नहीं है अपने पाप-पुण्यका विवरण रखना; किन्तु देवलोकके अधिकारी तो ईर्ष्यालु हैं। वे नवागन्तुकको उकसाते हैं कि वह स्वयं अपने पुण्योंका वर्णन करे। अपने मुखसे अपने सत्कर्मोंका वर्णन करनेसे वे क्षीण होते हैं। अहंकार बढ़ता है। इससे स्वर्गके सेवकोंको उस प्राणीका कम समय तक, कम सत्कार करना पड़ता है। उसे शीघ्र निकाल दिया जा सकता है।

'आप कहाँसे पधारे ?' द्वारपालको आश्चर्य था कि स्वर्गमें इतना अल्पायु बालक कैसे आ गया। यहाँ तो किशोरावस्थाका भोग देह धारण करके पुण्यात्मा आते हैं। बालवपु लेकर आनेवाला यहाँ क्या भोगेगा ? अब तक तो कोई इतना अल्पायु यहाँ आया नहीं। अतः उसने पूछा—'आप किससे मिलेंगे ? क्या परिचय दूँ आपका।'

'कठिनाई यह है कि तेरे दाढ़ी नहीं है, अन्यथा पता लगता कि मैं उसे कितना हिला सकता हूँ।' सुभद्र खीझ गया इस पूछाताछीसे—'मुझे किसीसे मिलना नहीं। यह पुरी देखने आया हूँ। तू द्वारसे हटेगा या…।'

'नहीं, नहीं !' द्वारपाल घबड़ाकर एक ओर हटा—'आप मुझे शाप मत दीजिये। आपको मैं रोकूँगा नहीं; किन्तु यह पुरी क्या अब पर्यटन स्थली बना दी सृष्टिकर्ताने ?'

'यह सृष्टिकर्तासे पूछ लेना।' सुभद्र समझता है कि जैसे वह इच्छा करते ही किसी लोकमें जा सकता है, वैसे ही यह स्वर्गका देवता द्वारपाल भी जा सकता होगा।

'भगवान सनत्कुमारोंमें तो ये हैं नहीं।' द्वारपाल सोचता खड़ा रह गया। उसके यहाँ एकाध बार वे ब्रह्मपुत्र पधारे हैं। उन्हें जानता है। लेकिन

यह बालक ? इतने सहज ढंगसें ब्रह्माजीसे पूछ लेनेकी बात कहनेवाला कौन ? लेकिन द्वारपालको यही बहुत लगा कि उसे शाप नहीं मिला। उसे द्वारपर केवल पूछताछ करनी होती है। किसीको रोकनेका तो उसे अधिकार है नहीं। जो यहाँ तक पहुँच सकेगा,वह स्वर्गका अनधिकारी हो नहीं सकता।

'यहाँ यह सब क्या हो रहा है ?' सुभद्रने सोधे सुधर्मा सभामें पहुंचकर शक्रसे ही पूछा। इन्द्रकी उस सभाके ऐश्वर्यका तो उसपर क्या प्रभाव पड़ना था; किन्तु अप्सराओंका नृत्य, गन्धर्वोंका गान-वाद्य उसे बहुत अटपटा लगा—'तुम सब पुण्यात्मा कहे जाते हो और यह पीं-पीं, टुन-टुन लगा रखी है। गायन ही करना है तो कन्हाईके गुण क्यों नहीं गाते ?'

'आप ?' इन्द्रने अब तक ध्यान ही नहीं दिया था। अब हड़बड़ा कर सिंहासनसे उठे। जो उन्हें इस प्रकार डाँट सकता है, वह दिगम्बर बालक भले दीखे, सामान्य नहीं हो सकता। जब शक्रके सहस्र नेत्र भी उसे पहिचान नहीं पाते, पता नहीं कौन कितना प्रभाव लेकर आ धमका है। हकलाते बोले—'आप सिंहासन स्वीकार करें ! मुझे सेवाका सौभाग्य दें और यदि सृष्टिकर्ताने यह पद....।'

बड़ा अस्थिर है इन्द्र पद। पृथ्वीपर सौ अश्वमेध यज्ञ करके तो प्राप्त होता है; किन्तु पता ही नहीं लगता कि कब यहाँसे किसे पदच्युत कर दिया जा सकेगा। असुर बलवान होते ही सुरोंको मार भगाते हैं। कोई तपस्वी छीन ले सकता है इन्द्रत्व और कोई ऋषि-मुनि प्रसन्न हो जाय किसीपर तो इसे ऐसे वरदानमें दे सकता है जैसे भिक्षामें फेंक दिया हो।

'मुझे अपनी पुरी दिखला दो। सुभद्रने शक्रकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। 'पूजा करनी हो तो कन्हाईकी करना। तुम्हारा यह स्वर्ग मुझ तो सड़ा-सड़ा लगता है। क्या बात है ? यहाँ सड़ाँध क्यों है ?'

'भगवन् ! लगता है कि आप किसी दिव्यलोकसे पधारे हैं।' अब हाथ जोड़ा पुरन्दरने—'वहाँ प्रलयसे पूर्व पतनका क्रम नहीं होगा; किन्तु यहाँ तो ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह इन्द्र मर जाते हैं। मैं प्रथम इन्द्र हूँ—स्वायम्भुव मन्वन्तरका इन्द्र। अभी-अभी इस लोकमें आया हूँ। कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करें।'

'मुझे यहाँ क्षयिष्णुताकी गन्ध आती है।' सुभद्रने सहज कहा।

'प्रतिपल यहाँसे प्राणी गिरते ही रहते हैं।' इन्द्रने स्वीकार किया—'पुण्यशेष होनेपर किसीको एक पल भी यहाँ रहने नहीं दिया जाता। लेकिन आप हमारा नन्दनकानन देखकर प्रसन्न होंगे।'

'यह पारिजात है। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला कल्पतरु!' इन्द्रने बड़े उत्साहसे अपने सुरोद्यानमें पहुँचकर कल्पवृक्षका वर्णन किया—'आप यहाँ आ गये हैं, इससे कुछ भी माँग सकते हैं।'

'मूर्ख है तू!' सुभद्र स्वर्गमें पहुँचते ही खीझ गया था और वह खीझ मिटी नहीं थी—'मैं भिक्षक हूँ जो इस वृक्षसे मागूँगा? मेरा कन्हाई कृपण हो गया है?'

इन्द्रने हाथ जोड़कर मस्तक झुका लिया; किन्तु मनमें प्रसन्न हो गये। यह बालक उन्हें पदच्युत कर देगा या स्वर्गका कोई बड़ा पद ले लेगा, यह भय मिट गया।

'ये इतने आतंकित क्यों दीखते हैं।' देवोद्यानमें बड़ी संख्या देवताओंकी थी। अप्सराएँ भी थीं। सब आनन्द-विनोदमें लगे थे; किन्तु इन्द्रके वहाँ पहुँचते ही एक ओर सिमटकर संयत खड़े हो गये थे। सुभद्रने यह देखा तो पूछ लिया।

'मैं शतक्रतु हूँ—यहाँका अधीश्वर!' इन्द्रने अब सगर्व कहा—'दूसरे सब सुरोंको मेरा सम्मान करना पड़ता है और शासन मानना पड़ता है।'

'हूँ, तो सुरोंमें भी छोटे-बड़े हैं। इनमें भी स्पर्धा होगी।' सुभद्रने खिन्न स्वरमें कहा—'यह विषमता क्यों है?'

'इनके पुण्योंके तारतम्यके कारण।' संक्षिप्त उत्तर दिया सुरेशने।

'ये कल्पवृक्षसे अधिक पुण्य या उन्नत पद क्यों नहीं माँग लेते?' बालक सुभद्रको उन संकोचसे एक ओर सिमटे सुरोंपर दया आयी—'ये इस वृक्षसे मुक्ति, भक्ति, ज्ञान तो माँग ही सकते हैं। इतने बड़े होकर भी इनमें इतनी समझ क्यों नहीं है?'

'कल्पतरु यह कुछ नहीं दे सकता!' इन्द्रको स्वीकार करना पड़ा—'न मोक्ष, न धर्म। केवल अर्थ और कामके सम्बन्धकी कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। ऐन्द्रियक भोग दे सकता है।'

'एक दरिद्र झंखाड़ तुमने लगा रखा है और मुझसे कह रहे थे कि मैं माँगूँ ?' सुभद्रने झिड़की दी इन्द्रको—'मैं इससे कन्हाईकी प्रीति माँगूँ तो ?'

'आप मुझपर और इस देवोद्यानपर दया कीजिये।' इन्द्रने घबड़ाकर पैर पकड़ लिये—'क्षीरोदधिसे निकला वृक्ष दूसरा नहीं है कहीं। इसके बिना स्वर्ग श्रीहीन हो जायगा। आपने ऐसी कोई माँग की तो यह निश्चय अपनी असमर्थताकी ग्लानिसे सूख जायगा।'

'तुम समझते हो कि तुम्हारी यह पुरी बहुत श्रीसम्पन्न है ?' सुभद्रने मुँह बनाया—'जहाँ क्षण-क्षण स्खलनसे ग्रस्त है, पतनसे त्रस्त है पुण्यात्मा प्राणी, अधमोत्तमकी स्पर्धा है, वासनाओंकी सड़ाँध व्याप्त है, वह पुरी यदि सुशोभन है तो अभागिनीपुरी और कौन-सी होगी ?'

देवेन्द्रको इस समय मौन रहनेमें ही अपनी कुशल लगी। वे जिस स्वर्गपर, जिस सुरपादपपर, जिस इन्द्रत्वपर अपार गर्व करते हैं, उस सबको जो इतने धड़ल्लेसे भाग्यहीन बतला रहा है, वह भले दीखनेमें बालक हो, उसको रुष्ट करके अपने कल्याणकी आशा नहीं की जा सकती।

'तुमने सौ अश्वमेध यज्ञ करके कोई बड़ा तीर नहीं मार लिया। यह सड़ा स्वर्ग मिला तुमको और वह भी सृष्टिकर्ताने अपने एक दिनमें चौदहको बाँटना निश्चित कर दिया।' अब गम्भीर बन गया सुभद्र—'मेरी मानो और भजन करो। अपनी सभाका यह नृत्य गीत बन्द कर दो। श्यामका सुयश गाओ-सुनो !'

'आपको कहीं किसीने नहीं बतलाया कि स्वर्ग केवल भोग भूमि है ?' इन्द्रने विनयपूर्वक कहा—'हम यहाँ कुछ भी करें, वह अपना फल देनेमें असमर्थ रहेगा।'

'देवता मूर्ख होते हैं।' सुभद्र बालक है, कुछ भी बोल पड़ता है। आप इसकी बातोंको गम्भीरतासे लें, यह उचित नहीं। यह तो कह गया—'कन्हाई और उसका नाम, सुयश सब चिन्मय, आनन्दघन। उसका फल क्या ? वह तो स्वयं फल है। अपनाओ और आनन्दमें डूबे रहो; किन्तु तुम पुण्य करके उसके फलसे स्वर्ग क्या आ गये, तुम्हें सर्वत्र फल ही चाहिये। तब दूसरा काम करो। इस निष्फल लोकमें क्यों पड़े हो ? जहाँ कर्मका फल होता है, वहाँ चलो !'

'हम इसमें स्वतन्त्र नहीं हैं।' इन्द्रने सिर झुकाये ही बतलाया—'पुण्य समाप्त होने तक हमें यहीं रहना पड़ेगा और पुण्य समाप्त होनेपर गिरा दिये जायेंगे।'

'अभागिनी है अमरावती।' सुभद्रको अरुचि हो उठी उस स्थानसे। जहाँ केवल अर्जित पुण्य-सम्पत्तिको भोगसे क्षीण ही करनेका अवसर है—उपार्जनका कोई अवसर भी नहीं, वह भी कोई रहने या टिकने योग्य स्थान है।

सुभद्रको स्वर्गमें कुछ क्षण भी रुकनेको कहना कठिन था। वह पता नहीं कब क्या कहे या करे। अतः इन्द्रने सविनय विदा किया।



उदार यम—

अमरावतीके अधिपतिने विदा तो किया सुभद्रको; किन्तु सुरपतिने अपनी स्वाभाविक कुटिलताका त्याग नहीं किया था। वे इसे नीति कहते हैं और आप जानते हैं कि उच्च पदपर पहुँचनेवाला प्रत्येक व्यक्ति नीतिको कितना अनिवार्य मानता है। यद्यपि नीतिका सामान्य अर्थ कूटनीति है और वह व्यक्तिको सरल, सहज तो रहने नहीं देती, शान्त-निश्चिन्त भी नहीं रहने दिया करती। उसका काम ही सशंक रखना है।

सुरेन्द्रने स्वर्गके दक्षिण द्वारसे सुभद्रको विदा किया। उनका अभिप्राय उसे यमके समीप पहुँचाना था। सचमुच सुभद्र संयमिनी पुरी ही पहुँचा; किन्तु श्यामके स्वजन कहीं पहुँचें, सृष्टिकर्ताने उनके लिए संकटकी स्थिति तो बनायी ही नहीं है।

स्वर्गके स्वामी प्रमाद कर सकते थे। वे, क्या हुआ कि सौ अश्वमेध करके शक्र हुए थे, सामान्य जीव ही थे; किन्तु संयमिनीके स्वामी तो साधारण जीव नहीं होते। प्रचेताके समान वे भी कारक पुरुष होते हैं। वे द्वादश भागवताचार्योंमें हैं। वे यदि प्रमादी होते तो कन्हाई उनकी स्वसाका पाणि स्वीकार करता ?

आप उन्हें यमराज कहते हो; किन्तु हैं वे धर्मराज। अपने उत्तर द्वारपर सुभद्रका स्वागत करने स्वयं उपस्थित मिले। उन्होंने परिचय पूछनेके स्थान-पर अर्घ्य अर्पित किया और सादर ले जाकर अपने सिंहासनपर बैठाकर पूजन करने लगे।

जब कोई सविनय श्रद्धासहित सत्कार करता है, तब उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। सुभद्र शान्त बैठा रहा। पूजन पूर्ण हो जानेपर उसने पूछा—'इस शान्त भव्यपुरीका नाम ?'

'यह भयानक यमपुरी संयमिनी है।' यमराजने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'और जिसे आपने आज यह अर्चनका सौभाग्य दिया है, यह इसका सर्वथा अनधिकारी महिषवाहन अकरुण यम है।'

'यह संयमिनी है ?' सुभद्रने चकित होकर चारों ओर देखा—'इतनी भव्य और शान्त संयमिनी ? इतने विनम्र आप और आपके ये सहज सरल अनुचर।'

'इस पुरीकी एक विशेषता है।' यमने बतलाया—'इसकी चारों दिशाओंमें चार द्वार हैं। यह भावपुरी प्रत्येक द्वारसे आने वालेको भिन्न-भिन्न रूपोंमें दीखती है। उसीके अनुरूप मैं और मेरे अनुचर भी दीखते हैं। उत्तर द्वार तो हमारा स्वागत द्वार है। इसीसे देवर्षि यदा-कदा दया करके पधारते हैं। इसीसे एक दिन यहाँ श्रीसंकर्षणके साथ स्वयं पुरुषोत्तमको पधारना है। यहाँ हमें धन्य करने आनेवाले महापुरुष इसी द्वारसे पधारते हैं।'

'दण्डपात्र पापी भी तो आते हैं यहाँ ?' सुभद्रको उनकी स्थिति देखनेका कुतूहल जागा।

'वे हमारे दक्षिण द्वारसे आते हैं।' यमने बतलाया—'लेकिन आप उधरसे आनेकी इच्छा करेंगे तो यह पुरी स्वयं आपके लिए अदृश्य हो जायगी। सृष्टिकर्ताने व्यवस्था ही ऐसी करदी है कि यहाँ उचित अधिकारी-को अपने अनुरूप द्वारसे ही आना पड़ता है।'

'आपके पूर्व और पश्चिम द्वारसे कौन आते हैं ?' जब अपनी इच्छानुसार किसो द्वारसे यहाँ आना सम्भव ही नहीं तो पूछकर ही जानना एकमात्र उपाय रहा।

'पूर्व द्वारसे पुण्यात्मा या साधक आते हैं। उन्हें स्वर्ग अथवा अन्य उत्तम लोकोंमें भेजनेकी व्यवस्था यहाँ है।' यमराजने बहुत संक्षिप्त परिचय दिया—'पश्चिम द्वार आगतोंके लिए नहीं है। यहाँकी यातनासे परिशुद्ध प्राणी उसी द्वारसे धरापर जन्म लेने जाते हैं।'

'सब जीवोंको यहाँ आना पड़ता है ?'

'केवल मर्त्यलोकके मनुष्योंको।' धर्मराजने कहा—'जो कर्मयोनिका प्राणी है, उसीके कर्मोंका निर्णय आवश्यक है। उनमें भी सब नहीं आते। जो योगी या पुण्यात्मा देवयानसे जाकर परमपद पाने वाले हैं, वे अथवा मुक्त पुरुष यहाँ नहीं आते। श्रीहरिके शरणागत, उनके आश्रितोंका तो मेरे यहाँ कोई विवरण ही नहीं रहता। उनके स्वामी ही उन्हें स्वधाम ले जाते

अथवा उनकी व्यवस्था करते हैं। मुझे उन लोगोंके सम्बन्धमें सोचनेका भी अधिकार नहीं।'

'आपके यहाँ कहीं नरक भी तो हैं।' सुभद्रने कहा--'आप कृपा करके मुझे उन्हें देखने देंगे ?'

'मुझसे कोई अपराध हो गया ?' यमराज घबड़ाकर खड़े हुए और सुभद्रके पैरोंपर सिर धर दिया उन्होंने—'आप मुझे क्षमा नहीं करेंगे ?'

'लेकिन मैंने तो आपके अपराधकी बात कही नहीं।' सुभद्र चौंक गया।

'आपने अभी कर्मलोक देखा भी नहीं है।' यमराजने कहा—'आप वहाँसे सब मर्यादाएँ भंग करके भी आये होते तो भी हम आपका इसी द्वारसे स्वागत करते। आपके सखाका मैं अत्यन्त क्षुद्र सेवक—आप नरकोंकी ओरसे दूरसे भी निकल जायँ तो वे नष्ट हो जायँगे। पुण्यात्मा प्राणीसे कोई प्रमाद होता है तब उसकी परिशुद्धि नरक-दर्शनका दण्ड बनती है।'

'इसका अर्थ है कि मैं आपके यहाँ कुछ देख नहीं सकता।' सुभद्रने सिर झुकाकर सोचा। उसे अब पूछकर ही जो पता लगे, वही जान सकेगा। उसने पूछा—'आप प्राणियोंको कितना दण्ड देते हैं ?'

'आप जानते हैं कि आपके सखाकी उदारताका अन्त नहीं है। दण्ड देनेकी बात तो वे तब सोचते हैं जब कोई उनके स्वजनका अपराध करे।' यमने कहा—'उनके विधानमें दया है, दण्ड नहीं है।'

'मैं तो आपके विधानकी बात पूछता हूँ।' सुभद्रको अपने सखाका स्वभाव कहाँ अज्ञात है।

'मेरा विधान कैसा ? सृष्टिमें, सभी ब्रह्माण्डोंमें केवल उनका विधान ही चलता है।' यमराजने बतलाया—'यह संयमिनीका स्वामी तो उनके विधानको सक्रिय रखनेवाला एक अत्यन्त सामान्य सेवक है।'

'आप किसीको दण्ड नहीं देते ?' सुभद्रको अद्भुत लगी यमकी बात।

'परिशोधनके प्रयत्नका नाम ही दण्ड पड़ गया है।' अब धर्मराजने पूरी बात समझायी—'कर्मयोनिमें जाकर प्राणी एक क्षणमें इतने पाप या पुण्य कर लेता है कि उसका परिणाम उसे युगों तक प्राप्त होता रहे। अतः जब वह देह त्यागकर यहाँ आता है, उसके पुण्य या पाप इतने अधिक हुए

कि किसी पार्थिव शरीरमें जाने योग्य वह नहीं है तब उसका प्रक्षालन करना आवश्यक हो जाता है। आप जानते हैं कि अंगरागको भी अन्ततः दूर करना पड़ता है। पुण्य अधिक हुए तो उसे भोग देह देकर पूर्व द्वारसे स्वर्ग या उपयुक्त लोक भेज दिया जाता है। पाप अधिक हुए तो इस मलको दूर करनेके लिए उसे यातना देह मिलता है। ऐसे अनेक मल होते हैं जो केवल धोने या रगड़नेसे नहीं दूर होते। संताप आवश्यक होता है। इसमें कष्ट होता है प्राणीको; किन्तु उसे स्वच्छ तो करना ही है। शोधनको सह सके, इसलिए यातना देह देकर उसे कम-से-कम कष्ट हो ऐसा विधान है। वह जैसे ही पार्थिव किसी देहको भी पाने योग्य हो जाता है, एक क्षण भी उसे यहाँ रोका नहीं जाता।'

'अन्तर्यामी हृषीकेश कर्मयोनिके प्राणीको अपथपर जानेसे बार-बार रोकते हैं।' तनिक रुककर यमराज सखेद बोले—'लेकिन वह उनकी चेतावनीपर ध्यान नहीं देता। अपनेको मलिन करनेमें सुख मानता है और तब उसे परिशुद्ध तो करना पड़ता है।'

'आपके यहाँ सब प्राणियोंका कर्म-विवरण रहता है?' सुभद्रने पूछा।

'सबका कर्म-विवरण ही कहाँ होता है। केवल मनुष्य ही कर्मयोनि-का प्राणी है। उसमें भी जो परमपदकी इच्छा करते हैं, उनको सर्वेश सम्हाल लेते हैं। उनकी प्रगति और भोगका विधान वे ही करते हैं।' यमराजने बतलाया—'यहाँ केवल वे आते हैं, जिन्हें कर्मचक्रमें अभी पड़े ही रहना है। जिन भाग्यहीनोंने अभी इससे परित्राणकी इच्छा ही नहीं की, केवल उनका कर्म-विवरण हमारे चित्रगुप्तजी रखते हैं।'

'आप उस विवरणके अनुसार दण्ड-विधान करते हैं?' सुभद्रने चित्रगुप्तसे पूछा, जो समीप ही हाथ जोड़े खड़े थे।

'मेरा काम तो केवल विवरण रखना है।' चित्रगुप्तने ऐसे कहा जैसे वे अपनेको निरपराध बतला रहे हों। उन्हें भय लग रहा था। यह जो बालक आया है, वह उनके सब विवरण फाड़ डाले तो इसे कोई रोक पावेगा? यहीं यह चित्रगुप्तके ही कान पकड़े तो?

'परिशोधनके लिए आवश्यक होता है यह जानना कि मल कितना और किस प्रकारका है।' यमराजने कहा—'दण्डका तो प्रश्न ही नहीं है; किन्तु यह तो देखना ही पड़ता है कि किसी प्राणीको तनिक भी अधिक

मनुष्य ही कर्म योनिका प्राणी है। मनुष्यके कर्मोंसे दूसरी योनियाँ मिलती हैं। कोई वृक्ष, पशु-पक्षी हो या देवता-भूत-यक्ष पर वह पहिले मनुष्य रहा है। स्थूल शरीर हमारे समान पार्थिव हो या वायव्य; किन्तु सूक्ष्म शरीरके तत्त्व वही होते हैं। फलतः जैसे मनुष्योंमें विभिन्न स्वभाव एवं रूचि-प्रवृत्तिके लोग होते हैं, दूसरो योनियोंमें भी होते हैं। आपने कुत्तों तथा गायोंके स्वभावमें अन्तर देखा होगा। ऐसे ही क्रूर या दयालु, विनोदी या शान्त आदि स्वभावके देवताओंमें, भूत-प्रेतोंमें-सब योनियोंके प्राणियोंमें होते हैं। उनके स्वभावका कोई एक ही ढग नहीं होता।



Licensed to post without Pre-paymen: Mathura- ... e No. MTR-5
भारतीय डाक-तार विभागकी पंजीयन संख्या—एम० टी० आर०-८५

कोई क्रूर हो या सात्विक-सब समान धर्मीसे हो सम्पर्क स्थापित करना पसन्द करते हैं। देवता सत्त्वगुण प्रधान हैं, अतः सत्त्वगुणी, संयमी, सदाचारी उन्हें प्रिय हैं। यक्ष-राक्षस राजस हैं भूत-प्रेतादिमें तमोगुणको प्रधानता है। ये सब अपनी समान प्रकृतिके मानवसे सम्पर्क करना पसन्द करते हैं।

शारदा प्रिंटर्स, मथुरा.

और कित

किन्तु यह तो देखना